अपूर्ण मनोरथ की स्मृति में

रूप नहीं रहत नहीं, गन्ध न मुसड़े आब ।
ज्योंनै भूँरो भूलियो, सो मैं फूल गुलाब ॥

सूची

भूमिका

मारवाड़ (राजस्थान) एक ओर जहाँ अपनी वीरता, बलिदान पर गौरव कर सकता है दूसरी ओर अपने साहित्य पर भी। वह इतिहासनिर्माता रहा है और साथ ही साहित्यनिर्माता भी। वास्तव में इतिहास और साहित्य अन्योन्याश्रयी हैं और राजस्थान का साहित्य इस कथन की खरी मिसाल है। उसका इतिहास त्याग और बलिदान का इतिहास है। स्वाभाविक ही उसका साहित्य भी भक्ति और भावना का साहित्य है, वीरता और विरद का साहित्य है। उसके जौहर, उसके साके और उसके प्राणोत्सर्ग एव विषपान, इतिहास की अमर थाती हैं और हैं उसके रासो, उसके पद, उसकी वाणियाँ और उसके दूहे साहित्य की अनमोल निधि। वह अमर जीवन साहित्य है।

पर आज वह युग बीत गया। जीवन के आदर्श एव व्यवहार के मापदड बदल गये। प्राचीन गौरव का स्वाभिमान आवश्य है, पर वर्तमान की हीनता में वह शोभा की वस्तु नहीं। उसका स्मरण हमारे लिये वेदनापूर्ण है। प्रस्तुत पुस्तक 'अरावली की आत्मा' राजस्थान से सबद्ध विविध विषयों पर दोहों एव सोरठों में लिखी सुन्दर पद्य रचना है। इसमें गौरव और ग्लानि की, टेक और टीसकी एक मिश्रित ध्वनि है। अरावगी, कूँजां, टीबा एव म्हारोदेश-रचनाओं को पढने पर राजस्थान से दूर रहनेवाले व्यक्ति के सम्मुख भी राजस्थान का जीता जागता चित्र खींच जाता है। दुर्गादास चन्द्रगदाई, मेवाड़ मन्दाकिनी, पद्मिनी, मीरा, कृष्णाकुमारी, कीर्तिस्तम्भ और राजघट आदि कविताएँ अतीव प्रभावोत्पादक हैं, जो हमारे दिलोंको राजस्थान के प्राचीन गौरव और वीरतापूर्ण इतिहास की ओर आकर्षित करती हैं। ललाटे शिष्ट शृगार की उत्तम रचना है।

यह राजस्थानी भाषा में है अत हमारे लिये विशेष आकर्षण एव अपने मन की चीज है। यह समाधान की बात है कि उसमें डिंगल की वह क्लिष्ट दुरुहता नहीं, जिसे समयके फासलेने हमारे लिये एकदम अगम्य सा बना दिया है और उसके अत्यत सूक्ष्म एव चमत्कृत काव्य सौंदर्य से हमे वचित सा कर दिया है। पुस्तक की भाषा अत्यत सरल राजस्थानी है, जिसे कोई भी हिन्दीभाषी समझ सकेगा और अरावली की आत्मा का रसास्वादन कर सकेगा। इस दृष्टि से लेखक का प्रयास अत्यत सराहनीय है।

मेरा विश्वास है राजस्थानवासी, इस भूमि एवं नामसे ममत्व रखनेवाले तथा अन्य भाषाभाषी अरावली की आत्मा के काव्य से अपने भावुक क्षणों को सरस एवं स्पंदनमय बना सकेंगे।

मुझे कवि के उज्ज्वल भविष्य की कामना है।

अकोला (बरार)
१६-५-४८

} ब्रिजलाल बियाणी

अपनी ओर से

सम्प्रदायिकता एवं प्रान्तीयता से दूर मां भारतभारती की सर्वाङ्गीण सेवा करना ही लोकभारती का उद्देश्य है। इससे सम्बन्धित व्यक्तियों का राजस्थान से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है और है, अतः राजस्थानी भाषा, साहित्य और कला की महत्त्वपूर्ण रचनाओं से भारतीय साहित्य के भंडार को पूर्ण करने के लिये उनकी ओर से "नवराजस्थान ग्रन्थमाला" प्रकाशित की जा रही है। इसका प्रथम पुष्प "अरावली की आत्मा" आप के सम्मुख है। इसमें राजस्थान से सम्बन्धित उच्च कोटि के अन्य ग्रन्थ भी शीघ्र प्रकाशित किये जायगे।

विदर्भ केसरी श्री ब्रिजलालजी बियाणी ने प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका लिखी है तथा इस ग्रन्थमाला के प्रकाशन में श्री विश्वनाथ जी मोर ने सक्रिय प्रोत्साहन एवं सहयोग प्रदान किया है, इसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं।

कविता और कवि

जिनका सम्बन्ध राजस्थान से रहा है या राजस्थान से जिनकी कुछ दिलचस्पी है, उन्हें मालूम है कि राजस्थानी भाषा, साहित्य और राजस्थान प्रान्त का निर्माण जनचर्चा का विषय बन गये हैं। राजस्थान भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा है, अतः उसका महत्व पूर्वाधिक बढ़ गया है। शासनवर्ग एवं जनता दोनों यह महसूस करते हैं कि २६ रियासतों में उसकी छिन्न भिन्न शक्ति संगठित हो। सभी संघ-बद्ध होने के लिये भिन्न भिन्न दृष्टि से सोच रहे हैं, प्रयत्नशील हैं। ये कल्पनाएँ तभी सफल हो सकती हैं, जब कि राजस्थान का केन्द्रीय सत्ता के आधीन एक प्रजातंत्रात्मक प्रान्त बने। भाषा, साहित्य, लोकजीवन एवं संस्कृति की साम्यता ही प्रान्त निर्माण के मूलाधार हो सकते हैं।

राजस्थानी भाषा राजस्थान की प्रान्तीय भाषा हो, इसमें कुछ लोगों को एतराज है। वे कहते हैं कि इस से राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रसार में बाधा आयेगी। भारत की ९० प्रतिशत जनता निरक्षर है, अशिक्षित है। वह अपनी बोलचाल की भाषा में ही शीघ्र और सुचारु रूप से शिक्षित हो सकेगी। रूस का उदाहरण हमारे सम्मुख है। कम्यूनिष्ट सरकार के कायम होने के पूर्व वहां सिर्फ ५, ६ बोलियों का ही अपना साहित्य था। आज वहाँ की समस्त ६६ बोलियों का अपना अपना विशाल और उन्नत साहित्य है और अधिकांश के अपने विश्वविद्यालय भी हैं। भारत के सर्वाङ्गीण विकास के लिए भाषा के अनुसार प्रांत निर्माण की समस्या का हल परमावश्यक है। राजस्थानी भाषा अत्यन्त महत्वपूर्ण भाषा है। उसके बोलनेवालों की सख्या लगभग दो करोड़ है। भारतवर्ष की भाषाओं में उसका सातवाँ स्थान है। उसका प्राचीन साहित्य विशाल एव सर्वाङ्गपूर्ण है। महामना स्व० मालवीय जी ने उसके बारे में लिखा है—"राजस्थानी का साहित्य वीरों का साहित्य है। संसार के साहित्य में उसका निराला ही स्थान है।" विश्वकवि स्व० रविबाबू लिखते हैं—"राजस्थानी को मैं संत साहित्य से उत्कृष्ट समझता हूँ।" वर्तमान राजस्थान की सीमा में भरतपुर, धौलपुर, ईडर, और पालनपुर आदि कुछ रियासतों

को छोड़कर समस्त रियासतों में अत्यन्त समानता है। भाषा और संस्कृति की दृष्टि से मालवा भी राजस्थान का अविभाज्य अंग है। अंग्रेजों ने ही राजस्थान से उसको अलग कर दिया था। पंजाब का हरियाना प्रदेश तथा उसके आसपास की रियासतें भी इस दृष्टि से राजस्थान के समीपतम हैं। भाषा और संस्कृति से अभिन्न यह विशाल प्रदेश स्वतंत्र भारत का एक प्रोन्नत एवं प्रजातंत्रात्मक प्रान्त अवश्यमेव बनेगा। ऐसे महत्वपूर्ण प्रदेश की मातृभाषा का जो विकास नव-साहित्य सृजन द्वारा होगा, उससे राष्ट्रभाषा के गौरव में भी वृद्धि ही होगी। बोल-चाल की राजस्थानी में यह पुस्तक लिखी गई है। कविताओं के बारे में पाठक स्वयं निर्णय करेंगे। आशा है, कविता की भाषा के सम्बन्ध में कोई शंका नहीं रहेगी।

पुस्तक के रचयिता श्री मनोहर शर्मा (बिसाऊ, जयपुर राज्य) राजस्थानी भाषा एवं साहित्य के मर्मज्ञ हैं। सम्भवतः राजस्थानी में नये साहित्य का सृजन इन्होंने ही सर्वाधिक किया है। ये आज के प्रचारप्रधान युग से दूर रहते हैं, अतः भारत के सुदूर प्रदेशों में रहनेवाला राजस्थानी समाज शायद इनसे कम परिचित होगा, पर दर-असल इनके द्वारा रचा साहित्य ही इनका वास्तविक परिचय है।

लोकभारती राजस्थानी के ग्रन्थों का प्रकाशन कर रही है, इसके लिए हम उसे हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

७६ वीं गान्धी जयन्ती
कलकत्ता

रतनलाल जोशी

अरावली

जो उन्नत आडावला, परवत पुन्न सरूप
राजस्थानी गीत को, गायक एक अनूप ॥ १ ॥

ओ उन्नत अरावली पर्वत, तूँ पुण्य स्वरूप है। राजस्थान के गीतों का तूँ अनुपम गायक है ॥ १ ॥

तेरै हीव उदार में, उमडी मरूधर प्रीत।
नन्दी नाला चालिया, गाता गाता गीत ॥ २ ॥

तेरे उदार हृदय में मरुभूमि का प्रेम उमड़ा। नदी नाले गीत गाते हुए चल पड़े ॥ २ ॥

गौरव गिर की गोद में, झरणा कुंज अपार।
वनदेवी बैठी करै, मन चाया सिणगार ॥ ३ ॥

गौरव गिरि की गोदी में अपार झरणें और कुञ्ज हैं, जहां वनदेवी बैठी हुई इच्छानुसार शृङ्गार करती है ॥ ३ ॥

काली काली बादली, ल्यावै पून अमन्द।
तूँ लेवै पुलकाय तन, सांवण को आनन्द ॥ ४ ॥

काले बादल पवन की तरंगों से लाए जाते हैं। तूँ पुलकित होकर सांवन के आनन्द लेता है ॥ ४ ॥

इमरत का झरना पडै, चन्द्रलोक सू आय।
तूँ न्हावै आनन्द में, अङ्ग अङ्ग सरसाय ॥ ५ ॥

चन्द्रलोक से आकर अमृत के झरणें पड़ते हैं। उस समय आनन्द में नहा कर तेरा प्रत्येक अंग सरस हो जाता है ॥ ५ ॥

सँमदर छोड़ी भोम नै, जद सूँ राज समाज।
छाँया सा आया गया, तूँ देख्या गिरिराज ॥ ६ ॥

समुद ने इस धरती को छोड़ा और फिर छाया की तरह राज-समाज आए और गये। इन सब को तूँने देखा ॥ ६ ॥

नील गगन मैं तूँ गयो, गोरव गिरि छविमान।
अमर लोक मैं गाणनै, राजस्थानी गान ॥ ७ ॥

छविमान गौरवगिरि, तूँ नील गगन मे गया, मानों अमरलोक में राजस्थानी गीत गाने के लिए ॥ ७ ॥

देवथान आनन्दमय, आबू सिखर अनूप।
राजस्थानी विजय धज, उन्नत जोत सरूप ॥ ८ ॥

आबू शिखर आनन्दमय और अनुपम देवस्थान है। वह उन्नत और ज्योतिमय राजस्थानी विजय ध्वजा है ॥ ८ ॥

कण कण आडावल तणो, गावै गीत सुभाय।
"ईं धरती पर दूसरो, जौहर सो व्रत नाँय" ॥ ६ ॥

अरावली का कण कण स्वभावसे गीत गाता है—"इस धरती पर जौहर के समान दूसरा व्रत नहीं है।" ॥ ९ ॥

सिंघनाद चित्तौड को, जालोरी हुंकार।
रणथंभोरी गर्जना, गूँजी बारम्बार ॥ १० ॥

चित्तौड़ का सिंहनाद, जालोर की हुकार और रणथभौर की गर्जना तुझ में बारम्बार गूँजो ॥ १० ॥

चहुँआणाँ की सान वा, परमाराँ को ग्यान।
सीसोदाँ की आन वा, तूँ देखी मतिमान ॥ ११ ॥

मतिमान, तूँने चौहानों की वह शान, परमारों का वह ज्ञान और शीशोदियों की वह आन सब देखे हैं ॥ ११ ॥

द्रूपद सुता की लाज ज्यूँ, राखी नन्दकुमार।
राजस्थानी की लाज तूँ, राखी देव उदार ॥ १२ ॥

उदार देव, जिस तरह द्रौपदी की लाज नन्दकुमार ने रखी थी उसी तरह तूँने राजस्थान की लाज रखी ॥ १२ ॥

पीथल का वे सूरमा, पातल का असवार।
कुण से पाणी बह गया, छत्रीपण ओतार ॥ १३ ॥

पृथ्वीराज के वे सूरमा, प्रतापसिंह के वे सवार, वे क्षत्रियत्व के अवतार किस पानी में बह गए? ॥ १३ ॥

घोड़ा छोड्या बीड़ में, सोया सै असवार।
तूं क्यूँ सूत्यो जागतो, ऊँची टेर पुकार ॥ १४ ॥

सवारोंने जंगल में घोड़ों को छोड़ दिया है और वे सो गये हैं। तूं जागता हुआ क्यों सोया है? जोर से पुकार ॥ १४ ॥

सीस हिमालो मुकट सो, कटि में विंध उदार।
भारत माता को बण्यो, आडावल गलहार ॥ १५ ॥

भारत माता के सिर पर हिमालय का मुकुट है, कटि मे उदार विन्ध्याचल है और अरावली गले का हार है ॥ १५ ॥

कूंजां

मन मोजां रगरेलियां, अम्मर बांध कतार।
कूँजां थांनै कुण दियो, यो आनन्द अपार ॥ १ ॥

मन की मौज और रगरेलियां कर रही हो। आकाश में कतार बना ली है। कूँजां, तुमको यह अपार आनद किसने दिया ॥ १ ॥

मन मोती तन ऊजलो, निरमल जात सुभाव।
धारा चाली दूद की, इमरत कै दरियाव ॥ २ ॥

मन मोती के समान, शरीर उज्ज्वल। जाति और स्वभाव दोनों निर्मल। मानों अमृतसागर की तरह दूध की धारा चली हो ॥ २ ॥

ऊँची ऊँची जावतां, ऊँचो ऊँचो मोद।
जगती कै जंजाल सूँ, तन की मन की सोद ॥ ३ ॥

जितनी ऊँची जाती हो उतना ही आनद बढ़ता जाता है और ससारके जजाल से तन और मन शुद्ध होता जाता है ॥ ३ ॥

इमरत की धारा चली, बांद सवाई प्रीत।
अम्मर मैं जद गूँजिया, थारा निरमल गीत ॥ ४ ॥

जब आकाश में तुम्हारे निर्मल गीत गूँजे तो अमृत की धारा प्रेम में मस्त होकर चल पड़ी ॥ ४ ॥

नंदी देखी मोद मैं, सर सर करतां जाय।
नील चुअन्ता खेत तूँ, देख्या मन हरखाय ॥ ५ ॥

तूँने सरसर करती हुई आनदमयी नदी देखी। मनको हरनेवाले नील वर्ण खेत देखे ॥ ५ ॥

डूगर देख्या गूँजता, देख्या तूँ बणराय।
सँमदर देख्या गाजता, बाँधी प्रीत सवाय॥ ६॥

तूँ प्रेम में भर कर गूँजते हुए पर्वत, वन और गर्जते हुए समुद्र देखे ॥ ६ ॥

धरती को आनन्द तूँ, कण कण लीन्यो स़ोर।
इब कित चाली गावती, ज्यूँ मोत्याँ की डोर॥ ७॥

तूँने धरती के आनद का प्रत्येक कण इकठ्ठा कर लिया है। अब 'मोतियों की लड़ी के समान गाती हुई कहाँ चली! ॥ ७ ॥

तूँ अम्मर की अपसरा, म्हे धरती का लोग।
तेरै मन में मोद है, म्हारै मन में रोग॥ ८॥

तूँ स्वर्गीय अप्सरा है, हम सांसारिक प्राणी हैं। तेरे मन में आनद है और हमारे मनमें रोग भरा पड़ा है ॥ ८ ॥

नीचै धरती ऊजली, ऊपर नील अकास।
तन मन सूँ स्वाधोन तूँ, निरमल थारी आस॥ ६॥

तेरे नीचे उज्ज्वल धरती है, ऊपर नीला आकाश हे। तूँ तन और मन से स्वाधीन है। तेरी आशा निर्मल हे ॥ ९ ॥

झरणो

भरणो निकल्यो प्हाड़ सूँ, गातो गातो गीत।
तन मन दोनूँ ऊजला, निरमल जाँकी रीत॥ १॥

झरना पहाड़ से गीत गाता हुआ निकला। इसके तन और मन उज्ज्वल हैं। इसकी रीति निर्मल है॥ १॥

इन्नै डूंगर डूंगरो, इन्नै प्हाड़ी प्हाड़।
बीच बिचालै मोद मैं, यो इमरत को झाड़॥ २॥

इधर पहाड़ और उधर पहाड़। बीचमें यह आनन्दमय अमृत का झाड़ है॥२॥

झिलमिल करतो गावतो, छमछम करतो जाय।
ऊँचो नीचो कूदतो, थिरक थिरक हरखाय॥ ३॥

झिलमिल करता हुआ, गाता हुआ वह चला जा रहा है—ऊँचा नीचा कूदता हुआ, थिरक थिरक कर प्रसन्न होता हुआ॥ ३॥

लोटपलोटा खावतो. करतो घणो किलोल।
मधरी मधरी चाल सूँ, गातो मीठा बोल॥ ४॥

जमीन पर लोटता हुआ, खूब कलोल करता हुआ, धीरे धीरे चलता हुआ, मधुर गीत गाता हुआ॥ ४॥

झाड़ा सूँ उलझावतो, रोड़ाँ सूँ टकराय।
बूंदाँ घणी उड़ावतो, झागाँ नै छितराय॥ ५॥

झाड़ों से उलझता हुआ, रोड़ों से टकराता हुआ, बहुत सी बूँदे उड़ाता हुआ और झाग फैलता हुआ॥ ५॥

हरियल डाली भेंटतो, देतो मोद अमान।
सागै लेतो फूल नै, सागै लेतो पान॥ ६॥

हरी डालियों से लिपटता हुआ, बहुत आनन्द देता हुआ और फूल पत्ते साथ लेता हुआ॥ ६॥

पाडोस्यां बतलावतो, करतो मीठी बात।
मन लेतो चित चोरतो, के दिन में के रात ॥ ७ ॥

पड़ोसियों से बोलता हुआ, मधुर सभाषण करता हुआ, मन लेता हुआ, चित्त चुराता हुआ – चाहे दिन हो या रात ॥ ७ ॥

हरियल बन का सूवटा, टीटूडी का टोल।
कूँजा आई दूर सूँ, जल मे करी किलोल ॥ ८ ॥

हरे बनके सुग्गे, टीटहीके झुण्ड और कूँजा पक्षी पानीमें कलोल करने आए ॥८॥

डूंगर केरा रूँखड़ा, रूँखा केरो बेल।
फूल्या थारो गीत सुण, ज्यूँ दीये में तेल ॥ ६ ॥

पहाड़ों के वृक्ष, वृक्षों की लताएँ तुम्हारे गीतों को सुन कर फूल उठे। मानों दीपक में तेल डाल दिया हो ॥ ९ ॥

खेती फूली मोद में, धन धरती का भाग।
ओमी थारै गीत में, ओमी थारी राग ॥ १० ॥

धरती का भाग्य धन्य है। खेती आनन्द से फूल उठी। तुम्हारे गीतों में अमृत है, तुम्हारी राग में अमृत है ॥ १० ॥

सोने को सूरज मिल्यो, थारी प्रीत हजार।
चान्दी को चन्दो मिल्यो, थारो प्यार अपार ॥ ११ ॥

सोने का सूरज तुम से मिला—प्रेम हजार गुणा हो उठा। चाँदी का चाँद तुमसे मिला—प्रेम का पार न रहा ॥ ११ ॥

आगै आगै तूँ चल्यो, पाछो मुड्यो न देख।
निरमल सूँ निरमल भयी, आगै आगै रेख ॥ १२ ॥

तू आगे ही आगे चलता रहा। पीठ मुड़ कर तुमने कभी नहीं देखा। आगे आगे तुम्हारी रेखा निर्मलतर होती गई ॥ १२ ॥

टीबा

[illegible] की दुनिया नई, टीबाँ को संसार।
भूरी भूरी रेत या, फैली अन्त न पार ॥ १ ॥

बालू की नई दुनिया है। टीबों का एक अपना संसार है।—भूरी भूरी रेत अनन्त दूरी तक फैली हुई है ॥ १ ॥

पाणी बिन फीका घणा, थारो बासूँ प्रेम।
थानैं तज कर भूलियो, थारो साचो नेम ॥ २ ॥

पानी बिना तुम बड़े फीके हो। तुम्हारा उससे बड़ा प्रेम है। वह तुम्हें छोड़ कर भूल गया। परन्तु तुम्हारा नेम सचा है ॥ २ ॥

निसदिन मन कै तार नैं, पून बजावै धीर।
आवै याद क भूलगा, वो समदर को सीर ॥ ३ ॥

रात दिन हृत्तन्त्रीके तारोंको पवन धीरे-धीरे बजाती रहती है।—वह समुद्रका साथ याद है या भूल गए? ॥ ३ ॥

कोयक सूकी झाड़खी, कोयक फीको फोग।
थानैं छाया के करै, जांकै तन मैं रोग ॥ ४ ॥

कोई सूखी सी झाड़ी, कोई निरस सा फोग, ये तुम्हें छाया क्या करेंगे? इनके शरीर में रोग है ॥ ४ ॥

आंधी आवै जोर की, मारै रेत उठाय।
थारो रूप अनूप बो, मन जावै थर्राय ॥ ५ ॥

जब जोर से आंधी आती है तो रेत को उठा मारती है। तुम्हारे उस अनुपम रूपको देख कर मन थर्रा जाता है ॥ ५ ॥

जेठ साड़ की तावड़ी, पावठ मोवठ सी।
थारो क्युँ ना बीगड़ै, ना दुख पावै जी ॥ ६ ॥

नौ

ज्येष्ठ और आषाढ़ की धूप, पौष और माघ का जाड़ा। परन्तु तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ता। जो नहीं घबराता ॥ ६ ॥

वा स्यालै की धुर घणी, जद थे एकोकार।
आख्यां सूँ छिप ज्याय यो, थारो सो संसार ॥ ७ ॥

जाड़े की उस धुर में तुम एकाकार हो जाते हो और तुम्हारा सारा संसार आँखों से छिप जाता है ॥ ७ ॥

मोद मान सरसावती, आवै पुन्यूँ रात।
थे किरणाँ नै साथ ले, नाचो सारी रात ॥ ८ ॥

आनन्द मना कर सरसाती हुई पूर्णिमा आती है। तुम किरणों को साथ लेकर रात भर नाचते रहते हो ॥ ८ ॥

थारा मीठो बोलणो, थारा निरमल गीत।
याद घणा दिन आवसी, थारो यो संगीत ॥ ९ ॥

तुम्हारी बोली मधुर है। तुम्हारे गीत निर्मल है। तुम्हारा संगीत बहुत दिनों तक याद आवेगा ॥ ९ ॥

बैठ्यो हरियल बाग में, जमनाजी कै तीर।
आंख्या मीचूँ मोद में, थारी करूँ हुँसीर ॥ १० ॥

जब मैं यमुना जी के किनारे हरे भरे बाग में बैठा हुआ प्रेम से आंखें बंद करता हूँ, तब तुम्हारी सुधि आ जाती है ॥ १० ॥

दुर्गादास

पातळ दुरगो दो जणा, सत को राख्यो कोल ।
राजस्थानी खाण का, ये हीरा अनमोल ॥ १ ॥

प्रतापसिंह और दुर्गादास इन दोनों ने सत्य की मर्यादा की रक्षा । राजस्थानी खान के ये अनमोल हीरे हैं ॥ १ ॥

"ईं धरती की लाज अब, मायड़ थार पास !"
कर ऊँची तरवार यूँ, बोल्यो दुरगादास ॥ २ ॥

दुर्गादास ने तलवार ऊँची उठा कर कहा—"माता, इस धरती की लज्जा अब तेरे ही हाथ में है ।" ॥२ ॥

बो छत्री, रजपूत बो, बो साचो सिरदार ।
नित घोड़े की पीठ पर, नित कर में तरवार ॥ ३ ॥

वह क्षत्रिय था, राजपूत था और सच्चा सरदार था । वह सदा घोड़े की पीठ पर रहा । उसके हाथ में सदा तलवार रही ॥ ३ ॥

बो कमधज नरसिंघ सो, तेज रूप औतार ।
प्राजळतै संसार सूँ, काढ्यो राजकँवार ॥ ४ ॥

वह कमधज राजपूत तेजोमय नरसिंह का अवतार था, जिसने जलते हुए संसार से राजकुमार अजीतसिंह को निकाला ॥ ४ ॥

साम धरम को रूप तूँ, मारवाड़ को ढाळ ।
तन राख्यो, राख्यो सुजस, राख्यो देस विसाळ ॥ ५ ॥

तूँ स्वामीभक्ति का रूप था, मारवाड़ की ढाल था । तूँने तन रक्खा, यश रक्खा और विशाल देश रक्खा ॥ ५ ॥

बो सोजत को सेर बो, देसूरी को बीर ।
मारवाड को च्यानणो, बो दुरगो रणधीर ॥ ६ ॥

वह रणधीर दुर्गादास "सोजत का शेर," "देसूरी का वीर" और "मारवाड़ का प्रकाश" था ॥ ६ ॥

मारवाड़ की भोम सूँ, गूँजै वाणी एक।
"जद पड़िया दिन सांकड़ा, दुरगो राखी टेक" ॥ ७ ॥

मारवाड़ की धरती से एक वाणी गूंजती रहती है—"जब आपत्ति का समय आया तो दुर्गादासने लाज बचाई" ॥ ७ ॥

असपत इन्दर कोपियो, तूँ आयो ततकाल।
डूबत राख्यो देस निज, ज्यूँ ब्रज नै गोपाल ॥ ८ ॥

बादशाह इन्द्र के समान क्रुद्ध हुआ तो तूँ तत्काल सामने आ गया। गोपाल ने ब्रज को बचाया उसी तरह तूँ ने अपना देश बचाया ॥ ८ ॥

आडावळ के डूँगरां, गूँजै एक पुकार।
ईं मरुधर की रेत को, दुरगो जाणी सार ॥ ९ ॥

अरावली के शिखरों पर एक पुकार गूंजती है—इस मरुभूमि की रेत का रहस्य दुर्गादास ने जाना ॥ ९ ॥

दुरनीती औरंग की, तूँ काटी ततकाळ।
कारज सार्‌या देस का, चाल अनोखी चाळ ॥ १० ॥

तूँ ने औरङ्गजेब की कूटनीति को फौरन काट डाला और अनोखे उपाय से अपने देश का काम पूरा किया ॥ १० ॥

चारणजी यूँ बोलिया, "हो दुरगा हुँसियार।
दळ बादळ ज्यूँ गाजती, आई फोज अपार" ॥ ११ ॥

चारणजीने कहा—"दुर्गादास सँभल जाओ, शाही सेना बादलोंके समान गरजती हुई आ रही है" ॥ ११ ॥

यूँ घूम्यो असवार बो, दुसमन कटकां मांय।
सादूळो बन सांचरै, ज्यूँ भय चिन्ता नांय ॥ १२ ॥

वह सवार शत्रुदल में इस तरह घूमा मानों निर्भय होकर सिंह वनमें निश्चिन्त घूमता हो ॥ १२ ॥

सरणागत की पालना, बीरां को सिणगार।
राख्यो सत कै नेम नै, तरवारां की धार ॥ १३ ॥

शरणागत की रक्षा करना वीरों की शोभा है। तूँने तलवार की धार से सत्य के नियम की रक्षा की ॥ १३ ॥

दिन जासी, जासी धरा, जासी राज समाज।
अम्मर सत के कारणे, थारा निरमल काज ॥ १४ ॥

समय चला जाएगा, पृथ्वी चली जाएगी और राज समाज चले जाएँगे परन्तु तुम्हारे निर्मल काम सत्य के कारण अमर रहेंगे ॥ १४ ॥

साम धरम के कारणें, छोड्या धन अर धाम।
दुरगो आसकरन्न को, अम्मर करगो नाम ॥ १५ ॥

स्वामीभक्ति के कारण धन और धाम त्याग कर आसकरण का पुत्र दुर्गादास अपना नाम अमर कर गया ॥ १५ ॥

गजमुकता में आब ज्यूँ, फूलाँ माँय सुवास।
त्यूँ निरमल जस नाम में, अम्मर दुरगादास ॥ १६ ॥

जैसे गजमुक्ता में आब रहती है, फूलों में सुवास रहती है, उसी तरह अमर दुर्गादास नाम में ही निर्मल यश है ॥ १६ ॥

जलम भोम जननी जनक, सदा सुरग सूँ सार।
थासूँ गासी गीत यो, वीरा को संसार ॥ १७ ॥

तुम्हारे कारण वीर जन यह गीत गाते रहेंगे—जन्मभूमि, जननी, जनक और स्वर्ग से भी सदा श्रेष्ठ है ॥ १७ ॥

सुरगापत के बाग में, यूँ बोल्यो जसवन्त।
थासूँ उरिण न होयस्याँ, ओ नाहर द्युतिमन्त ॥ १८ ॥

स्वर्ग के बाग में जसवन्त सिंह ने यों कहा कि ओ द्युतिमान् सिंह, तुझ से मैं कभी उऋण नहीं हो सकता ॥ १८ ॥

जलम्यो राजस्थान में, पातल को असथान।
वीर सिवा की भोम में, छोड्या जाय पिरान ॥ १९ ॥

वह राजस्थान में पैदा हुआ क्योंकि वह प्रतापसिंह का स्थान है। उसने महाराष्ट्र में प्राण त्यागे क्योंकि वह वीरशिवाजी का देश है ॥ १९ ॥

दुरग की कीरत करी, राजस्थानी ख्यात।
पाप कटै सम्पत फलै, नाम लियाँ परभात ॥ २० ॥

राजस्थानी इतिहास में दुर्गादास का यश इस तरह गाया गया है—प्रभात समय दुर्गादास का नाम लेने से पाप कटता है और सम्पत्ति मिलती है ॥ २० ॥

चन्द बरदाई

उडतो हंसो गीत गा, काट्यो जग जंजाल।
विस नै रस को रूप दे, सूनी करगो पाल ॥ १ ॥

हंसने उड़ते समय गीत गाकर संसार का जंजाल काट डाला। वह विष को अमृत का रूप देकर सरोवर को सूना कर गया ॥ १ ॥

बुजतो दीयो देखली, जिन्दगानी अर मोत।
आगै घोर अँधार कै, पाछै जगमग जोत ॥ २ ॥

दीपक ने बुझते समय जीवन और मृत्यु दोनों को देखा।—आगे घोर अन्धकार है और पीछे जगमग ज्योति है ॥ २ ॥

पीथल को गायक अमर, प्रगट्यो चन्द अमन्द।
वीणा सूँ धुन नीसरी, बरस्यो रस आनन्द ॥ ३ ॥

पृथ्वीराज का अमर गायक पूर्णचन्द्र प्रगट हुआ। वीणा से गीत निस्तृत हुआ और आनन्द-रस बरसने लगा ॥ ३ ॥

दरबारां को च्यानणो, रणखेतां की जोत।
वाणी को वरदान वो, रसधारा को सोत ॥ ४ ॥

वह राजसभा का प्रकाश था, युद्धभूमि की ज्योति था, वाणी का वरदान था और रसधारा का स्रोत का ॥ ४ ॥

अंधड़ आयो बाग में, पान फूल को नास।
सरणाटो माच्यो घणो, कोयल छोड़ी सांस ॥ ५ ॥

बाग में आँधी आई, पान फूल नष्ट हो गए। भयकर सन्नाटा मचा और कोयल ने साँस छोड़ी ॥ ५ ॥

वे वज्जर सा सूरमा, धर कांपी थर्राय।
पल में परलै ऊतरी, सारा गया विलाय ॥ ६ ॥

वे वज्र के समान सूरमा, जिनसे धरती थर्रांती थी, पल भर में प्रलय उतर पड़ा कि सभी लुप्त हो गए ॥ ६ ॥

समदर कोप्यो भोम पर, वनखँड लागी लाय।
के आयो भूकम्प थो, सारा गया विलाय ॥ ७॥

वे सभी लुप्त हो गए क्या पृथ्वी पर समुद्र ने कोप किया या वन में दावाग्नि लग गई या कोई भूकम्प आया॥ ७॥

पीथल के दरबार में, आया मुनिवर व्यास।
भारत बिरच्यो दूसरो, देख्यो अमर उजास ॥ ८॥

पृथ्वीराज की सभा में महामुनि व्यास आए। उन्हों ने दूसरा महाभारत बनाया और अमर प्रकाश देखा॥ ८।

भासा के इतिहास में, तो सम और न कोय।
रासो विरच्यो रूक सूँ, गेरयो समद विलोय॥ ९॥

भाषा के इतिहास में तेरे समान दूसरा कोई नहीं है। तूँने भाले से रासो काव्य लिखा और समुद्र का मथन कर डाला॥ ९॥

तूँ देख्यो मझ भान तप, देखी रैन अंधार।
दो धारा के बीच ज्यूँ, लोकाचल पर पार॥ १०॥

तूँने मध्य आकाश का सूर्य प्रकाश देखा, और घोर अन्धकारमयी रात देखी—मानो दो धाराओंके बीच में लोकाचल पर्वत हो॥ १०॥

गीत सुण्या कवि चन्द का, चिमकी बीज प्रमाण।
पीथल का सामन्त रण, भूमया सार उफाण॥ ११॥

महाकवि चन्द के गीत को सुनते ही बिजली सी चमकने लगी। पृथ्वीराज के सामन्त तलवार लेकर रण में झूमने लगे॥ ११॥

रामकथा भागीरथी, व्यास कथा नद सिंद।
चन्दकथा गोदावरी, सार समोयो हिंद॥ १२॥

रामायण गंगा के समान है, महाभारत सिंधु के समान है और पृथ्वीराजरासो गोदावरी है। यह भारत का सार है॥ १२॥

मेवाड़-मंदाकिनी

जय जय जय इकलङ्ग जय, जय जय जय चित्तोड़।
जय जय जय मेवाड धर, जय राणा सिरमोड़ ॥ १ ॥

इकलिङ्ग की जय हो, चितोड़ की जय हो, मेवाड़ धरा की जय हो, शिरोमणि राणा जी की जय हो। १ ॥

न्हाय खड्ग की धार, अमर लोक में जा वस्या।
मानधणी सिरदार, साचो तीरथ चीतगड़ ॥ २ ॥

स्वाभिमानी सरदार तलवार की धारा में नहा कर स्वर्ग चले गए। चित्तौड़ सच्चा तीर्थ है ॥ २ ॥

मेवाड़ी रण नै चढ़्या, कर दुर्गा की याद।
मेवाड़ी रण सूँ मुड़्या, दुर्गा के परसाद ॥ ३ ॥

दुर्गा को याद करके मेवाड़ी रणयात्रा को चढ़े। दुर्गा की कृपा से मेवाड़ी रण से लौट कर आए ॥ ३ ॥

क्यूँ न होय मेवाड धर, तीरथ रज सी पूत।
एक एक कण में रम्यो, एक एक रजपूत ॥ ४ ॥

मेवाड़ की पृथ्वी तीर्थराज के समान पवित्र क्यों न हो, उसके एक एक कण में एक एक राजपूत रमा है ॥ ४ ॥

कविराजा पासी घणो, सुरगापत में मोद।
कलजुग को रघुवंस यो आरजकुल सीसोद ॥ ५ ॥

स्वर्ग में महाकवि कालिदास को बड़ा आनन्द मिलेगा, शीशोदियों का आर्यकुल कलियुग में रघुवंश के समान है। ५ ॥

रजपूतां की ख्यात में, तूँ साचो सिरमोड।
ओर दुरग नीचा रहा, आभ चढ़्यो चित्तोड़ ॥ ६ ॥

राजपूत इतिहास में तूँ सच्चा शिरोमणि है। अन्य दुर्ग नीचे रह गए और चित्तौड़ आकाश में चढ़ गया। ६ ॥

बखतर पैर्यां जलमियाँ, खडग लियाँ निजहत्थ।
सिंघ रूप नर तूँ घड्या, धन धरती समरत्थ ॥ ७ ॥

उस समर्थ धरती को धन्य है, उसने नरसिंह पैदा किए। वे कवच पहने हुए और हाथ में तलवार लिए पैदा हुए ॥ ७ ॥

जलम लियो रजपूत घर, हाथ दिया करतार।
करी चाकरी खडग की, ये जग भोगणहार ॥ ८ ॥

संसार को भोगने वाले ये हैं—राजपूतकुल में जन्म लिया, ईश्वर ने दो हाथ दिए और तलवार की सेवा की ॥ ८ ॥

कुण घटतो वडतो कवण, सिर देवाँ की वेर।
एक खेत का नीपजा, सं मेवाडी सेर ॥ ६ ॥

सिर देने में कौन कम और कौन ज्यादा। सभी मेवाड़ी शेर एक ही खेत में पैदा हुए हैं ॥ ९ ॥

जद दिल्ली ढिल्ली भई, सत आयो चित्तोड़।
राणा राख्यो प्राण दे, रजपूताँ सिरमोड ॥ १० ॥

जब दिल्ली का पतन हो गया तो सत्य चित्तौड़ आ गया और क्षत्रिय शिरोमणि राणा ने प्राण देकर भी उसकी रक्षा ॥ १० ॥

बापा रावल रोपियो, सींच्यो राणा राव।
अखै अमरफल लागिया, सुरतर तणो सुभाव ॥ ११ ॥

बापा रावल ने उसे लगाया। राणा, राव और सरदारों ने उसे सींचा। अक्षय अमरफल उसके लगे। उसका स्वभाव कल्पवृक्ष के समान रहा ॥ ११ ॥

मेवाड़ी कण कण रमी सुण लीजे या तान।
सत राख्यो आचार को, धन धन राव खुमान ॥ १२ ॥

मेवाड़ के प्रत्येक कण में यह तान सुनाई देती है—राव खुमान धन्य है, उन्होंने आचार के सत्य की रक्षा की ॥ १२ ॥

रूप सरोवर माँय, पदमण को विगसी कली।
महक उठ्यो गरणाय, आरज कुल नारी धरम ॥ १३ ॥

सौन्दर्य-सरोवर में पद्मिनी की कली विकसित हुई। उसके आर्यकुल और नारी धर्म बड़ी तेजी से महक उठा ॥ १३ ॥

जौहर को धूँवो लग्यो जिन ठाँवाँ मैं जाय।
कालस उग ठावाँ तणी, मो तन लपटो आय ॥ १४ ॥

जिन मकानों के जौहर का धूवा लगा, उनकी. कालिख मेरे सारे शरीर से आ लपटी ॥ १४ ॥

चिता जली धूँवो उठ्यो, आभ गयो छितराय।
ज्यूँ सुरगापत जाण नै, पैड़ी दई लगाय ॥ १५ ॥

चिता जली, धूँवा उठ कर आकाशमें फैल गया, मानों स्वर्ग जाने के लिए पैड़ी लगा दी हो ॥ १५ ॥

बादल रण मैं गरजियो, ज्यूँ पारथ को पूत।
के बूडो के डीकरो, सिंघ सदा मजबूत ॥ १६ ॥

वीर बादल रणक्षेत्र में अभिमन्यु के समान गरज उठा—सिंह चाहे छोटा हो या बड़ा सदा शक्तिशाली है ॥ १६ ॥

अरबुद गिर का रूँखड़ा, बोल्या सीस झुकाय।
म्हें देख्यो हम्मीर नै, वो सुख कह्यो न जाय ॥ १७ ॥

अरावली पर्वत के वृक्ष सिर झुका कर बोले—हमने हमीर को देखा है, वह दर्शनसुख बखाना नहीं जाता ॥ १७ ॥

चुण्डाजी भीसम तणो, अन्तर एक बसेख।
व सतजुग मैं जलमियाँ, ये कलजुग की रेख ॥ १८ ॥

चुण्डाजी में और भीष्म में एक बड़ा अन्तर है—वे सतयुग में पैदा हुए और ये कलिकाल में पैदा हुए ॥ १८ ॥

आडावल भू पर जितै, थारो नाम अचल्ल।
राणै कुंभज रोपियो, कीरत खम्भ अटल्ल ॥ १९ ॥

जब तक संसार में अरावली हैं, तुम्हारा नाम अचल है। राणा कुंभाजी ने अटल कीर्तिस्तंभ रोप दिया है ॥ १९ ॥

पग मे बाँध्या घूँघरू, कर मैं ले खड़ताल।
मीराँ नाची स्याम रँग, मीरा रँग गोपाल ॥ २० ॥

पैर में घूंघरू बांधे, हाथ में खड़ताल ली—इस प्रकार मीरा स्याम रंग में और स्याम मीरा के रंग में नाचने लगे ॥ २० ॥

अरबुद गिर की चिड़कली, बोली सीस झुकाय।
सिंघां सांगे सिंघणी, तारा—पिरथीराय ॥ २१ ॥

अरावली पर्वत की चिड़िया ने सिर झुका कर कहा—शेर के साथ शेरनी—तारा और पृथ्वीराज की जोड़ी ॥ २१ ॥

वाह विधाता तूँ करयो, सांगो वजर सरीर।
सूरज कुल सूरज तप्यो, वो मेवाड़ी वीर ॥ २२ ॥

धन्य विधाता, तूँ ने संग्रामसिंह को वज्र-शरीर बनाया। वह सूर्यकुल का सूर्य मेवाड़ी-वीर खूब तपा ॥ २२ ॥

सांगै की करणावती, रम्भा कै हुणियार।
वा विरची रणखेत में, ज्यूँ चण्डी ओतार ॥ २३ ॥

संग्रामसिंह की करणावती रंभा के समान रूपवती थी, वह चण्डी का अवतार होकर युद्धक्षेत्र में क्रोधित हुई ॥ २३ ॥

साम धरम की ऊजली, पन्ना राखी आन।
सुत गोदी को सूँपियो, धन धन राजस्थान ॥ २४ ॥

स्वामीभक्ति की उज्वल आन को पन्ना ने रक्खा और गोदी का लाल सौंप दिया। राजस्थान को बारबार धन्य है ॥ २४ ॥

सुरगापत सूँ उतर्‌या, गिरधारी गोपाल।
गढ़धारी जयमल फतो, हिन्दवानै की ढाल ॥ २५ ॥

गिरधारी गोपाल स्वर्ग से आए थे और गढ़धारी जयमल और फत्ता भारत की ढाल थे ॥ २५ ॥

आयो, आ पाछो फिर्‌यो, अमर सनेसो सूँप।
पातल मानव लोक में, देवदूत को रूप ॥ २६ ॥

आया और आकर वापिस चला गया—अमर संदेश देकर। प्रतापसिंह मानव-लोक में देवदूत के समान हैं ॥ २६ ॥

हल्दी घाटी में मच्या, कर में ले समसीर।
सीस हथेली पर लियो, मेवाड़ी रणधीर ॥ २७ ॥

हल्दीघाटी में हाथ में तलवार धारण करके मेवाड़ी योद्धा घूमे। उन्होंने अपना सिर काट कर हथेली पर रख लिया ॥ २७ ॥

सास धरम यूँ राख जे, ज्यूँ झाला सिरदार।
टूक टूक तन हो रया, पातल लियो उबार॥ २८॥

स्वामीभक्ति इस तरह दिखानी चाहिए जिस प्रकार झाला सरदार मन्नाजी ने दिखाई। उनका शरीर टूक टूक हो गया परन्तु प्रताप को उबार लिया॥ २८॥

पातल तूँ न उवारियो, चेतक साची जाण।
हिन्दु-कुल आरज-धरम, तूँ राख्यो केकाण॥ २६॥

चेतक, सच्चो मान, तूने प्रतापसिंह को नहीं बचाया। हे घोड़े, तूँने हिन्दूकुल और आर्यधर्म को ही बचा लिया॥ २९॥

पीथल सिरखा दो जणा, देख्या सुण्या न कोय।
पातल सिरखा दो जणा, हुयाँ न आगे होय॥ ३०॥

पृथ्वीराज जैसे दो व्यक्ति न तो देखे ही गए, न सुने ही गये। प्रतापसिंह जैसे दो व्यक्ति न कभी हुए और न कभी होंगे॥ ३०॥

दो हिन्दूपत ऊजला, रजपूती की सान।
वीर सिवा मरहट्ट रो, पातल राजसथान॥ ३१॥

दो हिन्दूपति उज्वल हैं, राजपूती की शान हैं—महाराष्ट्र के वीर शिवाजी और राजस्थान के प्रतापसिंह॥ ३१॥

सात पुस्त की सूँप दी, संचित सम्पत वाह।
धन की कीमत तूँ करी, धन धन भामासाह॥ ३२॥

सात पुश्त को संचित सम्पति सौंप कर तूँने धन की असली कीमत समझी, भामाशाह तुझे बार बार धन्य है॥ ३२॥

हमाँहमीं साची करी, सिर देवा रणधीर।
ये चन्दावत ऊजला, ये सक्तावत वीर॥ ३३॥

उन योद्धाओं ने सिर देने में अच्छी स्पर्द्धा की। वे उज्वल चन्दावत थे और ये वीर शक्तावत थे॥ ३३॥

भीम सुता को लाज ज्यूँ, गिरधारी कै साथ।
रूपनगर की लाज ज्यूँ, मेवाड़ी नर नाथ॥ ३४॥

जिस प्रकार द्रौपदी की लाज श्रीकृष्णने बचाई थी उसी तरह रूपनगर की राजकुमारी की राजसिंह ने उबारा॥ ३४॥

आरज धारा यह चली, लहैर लहैर इतराय।
आ पूगी मेवाड़ धर, राज समंदर मांय ॥ ३५ ॥

आर्यधारा लहर लहर करके इतराती हुई वह चली और मेवाड़ देश के राज समुद्र में आ पहुँची ॥ ३५ ॥

तूँ तो कृष्णा पी गई, बिस की प्यालो एक।
अब मन्नै पीणी पड़ी, बिस की घूँट अनेक ॥ ३६ ॥

कृष्णा, तूँ तो एक ही विष की प्याली पी गई परन्तु अब मुझे अनेकों विष की घूँट पीनी पड़ी ॥ ३६ ॥

हर हर हर म्हादेव, जय जय जय मेवाड़पति।
सुणजे गूँज सदेव, आडावल के डूँगरां ॥ ३७ ॥

"हर हर महादेव" "जय जय मेवाड़पति" यह गूँज अरावली की चोटियों पर सदैव सुनाई देती रहेगी ॥ ३७ ॥

चण्डी को पूजा करी, रणखेतां में जाय।
थे पूज्यो इकलङ्ग नैं, देवालय में आय ॥ ३८ ॥

उन्होंने युद्धक्षेत्र में चण्डी की पूजा की और देवालय में आकर इकलिङ्ग की पूजा की ॥ ३८ ॥

सूरज कुल सीसोद धन, फररी गड़ चित्तोड़।
दूर दूर का जातरी, आया दौड़ां दोड़ ॥ ३९ ॥

सूर्यवंशी सीसोदियों की ध्वजा चित्तौड़ गढ़ पर फहराने लगी और दूर दूर के यात्री दौड़ दौड़ कर वहाँ आने लगे ॥ ३९ ॥

मेवाड़ी बस दो घणा, फड़ म्होडण भुजदण्ड।
सिंधुर घट चिंघाड़से, केहर एक प्रचण्ड ॥ ४० ॥

सेना को वापिस लौटने के लिए बस दो मेवाड़ी भुजदण्ड काफी हैं। एक प्रचण्ड सिंह से हाथियों का झुण्ड चिंघाड़ने लगता है ॥ ४० ॥

ठौर ठौर मंदाकिनी, तीरथराज प्रयाग।
धन धरती मेवाड़ की, हिन्दवानें को भाग ॥ ४१ ॥

मेवाड़ की धरती धन्य है। वह हिन्दू जाति का भाग्य है। वहां ठौर ठौर गंगाजी हैं और तीर्थराज प्रयाग है ॥ ४१ ॥

ओर देस का राजजे, बाँका भट हजार।
मेवाड़ी बस राजजे, गिण्या गिणाया च्यार ॥ ४२ ॥

अन्य देश को हजारों बाँके योद्धा रखने पड़ते हैं, परन्तु मेवाड़ी वीर बस चार ही काफी हैं ॥ ४२ ॥

चेप सक्यो ना कोय, कालो थारी ख्यात में।
हेम न काटल होय, गंगाजल निरमल सदा ॥ ४३ ॥

तुम्हारे इतिहास में कोई भी कलंक नहीं लगा सका। सोने के जंग नहीं आता। गंगाजल सदैव पवित्र है ॥ ४३ ॥

जे पाऊँ मेवाड़ धर, पातल को असवार।
पग की रज ल्यूँ सीस पर, तनमन धन दूयूँ वार ॥४४॥

यदि मुझे मेवाड़ धरा पर प्रताप का एक सवार मिल जाय तो मैं उसके चरणों की धूल सिर चढ़ाऊँ और तन मन धन न्यौछावर कर दूँ ॥ ४४ ॥

मेवाड़ी छोडी नहीं, आरजकुल की चाल।
निज पग सूँ रणखेत धर, निज कर सूँ करवाल ॥४५॥

मेवाड़ी वीर ने आर्यकुल की मर्यादा को नहीं छोड़ा—अपने पैर से युद्धक्षेत्र और हाथ से तलवार ॥ ४५ ॥

सतियाँ का असथान, वीराँ को छतरी जठै।
रजपूती की आन, कद में देखूँ चीतगढ ॥ ४६ ॥

जहाँ सतियों के स्थान हैं और वीरो की छतरियाँ हैं उस रजपूती की आन चित्तौड़ को मैं कब देखूँगा ॥ ४६ ॥

आरजकुल में जलमियाँ, पूग्या ना चित्तोड़।
धरक जमारो बूडगा, आय सवाई खोड़ ॥ ४७ ॥

आर्यकुल में पैदा हुए और चित्तौड़के दर्शन नहीं किए—ऐसी जिन्दगीको धिक्कार है, शरीर को व्यर्थ की कष्ट दिया ॥ ४७ ॥

बम बम बोल्या सिर कट्या, भूमया धड़ रणखेत।
तड़काऊ उठ धावस्याँ, मेवाड़ी धर हेत ॥ ४८ ॥

कटे हुए सिर जहाँ बम बम बोलें और धड़ जहाँ युद्धस्थल में जूझते रहें उस मेवाड़ी धरा की तरफ प्रात काल उठकर रवाना होवेंगे ॥ ४८ ॥

कवि-वंदना

आद कवी सो दूसरो, हुयो न आगै होय।
रामकथा भागीरथी, जग में अनुपम दोय ॥ १ ॥

आदिकवि के समान दूसरा न तो कोई हुआ है और न होगा ही। रामकथा और भागीरथी दोनों ससार में अनुपम हैं ॥ १ ॥

सकल पुण्य को एक थल, सकल सुमंगल रास।
ग्यानलोक को राजपथ, विरच्यो मुनिवर व्यास ॥ २ ॥

मुनिवरव्यास ने सकल पुण्य का एक स्थल, सकल मगल की राशि और ज्ञानलोक का राजपथ महाभारत के रूप में बनाया ॥ २ ॥

इमरत सींच्यो मेघ सूँ, जग की पूरी आस।
नन्दन वन संसार में, थरप्यो कालीदास ॥ ३ ॥

मेघ से अमृत सींच कर ससार की आशा पूरी की। कालिदास ने ससार में नन्दनवन तैयार कर दिया ॥ ३ ॥

राजस्थानी गगन में, प्रगट भयो जद चन्द।
पूरव पच्छिम का भया, तारा सारा मन्द ॥ ४ ॥

राजस्थानी साहित्याकाश मे जब चन्दवरदाई प्रगट हुए तो पूर्व और पश्चिम के तमाम तारे मंद पड़ गए ॥ ४ ॥

मानवता को रूप अर, आरतजन की पीर।
अविनासी की जोत नै, देखी संत कबीर ॥ ५ ॥

मानवता के रूप को, आर्तजन की पीड़ा को और अविनाशी ज्योति को सत कबीर ने देखा ॥ ५ ॥

मैथिल कोकिल अमर जस, इमरत कलकल गान।
सत काड्यो सृंगार को, जग तिरपत कर पान ॥ ६ ॥

मैथिल कोकिल विद्यापति का यश अमर है। उनके गान मे अमृत है। उन्होंने शृङ्गार का सत्य निकाला और पान कर ससार तृप्त हुआ ॥ ६ ॥

दूर दूर का स्हैर सै, छोटा छोटा गाँव।
तुलसी के परताप सूँ, भया राम का ठाँव ॥ ७ ॥

दूर दूर के शहर और छोटे छोटे गाँव, सब तुलसी के प्रताप से राम के स्थान हो गए ॥ ७ ॥

हाथ सितारो सुर कस्यो, मुख में मधरा बोल।
कान्हूड़े के रंग में, सूरदास को चोल ॥ ८ ॥

हाथमें कसा हुआ सितारा और मुखमें मधुर गीत, सूरदास का शरीर तो कृष्णरंग में रँगा हुआ है ॥ ८ ॥

पीकर प्यालो प्रेम को, गाया इमरत गान।
जायस को वासी कस्यो, कविता को सनमान ॥ ९ ॥

प्रेमका प्याला पीकर अमृतगान गाया। मलिक मुहम्मद जायसीने कविता का सम्मान किया ॥ ९ ॥

यो भारत को लाल यो, प्रेम समद की सीम।
सार रूप सत को लियो, धन धन धीर रहीम ॥१०॥

धीर रहीम को धन्य धन्य। वह भारत का लाल था, प्रेम समुद्र की सीमा था। उसने सत्य का सार निकाल लिया ॥ १० ।

ऊँची नीची खुड़दड़ी, सुमधुर आज अनन्य।
पीथल थारी वेल सूँ डिंगल भासा धन्य ॥ ११ ॥

ऊँची नीची और ऊबड़ खाबड़ डिंगल आज अनन्य सुमधुर हो गई। पृथ्वीराज, तुम्हारी वेल नामक रचना ने डिंगल को धन्य कर दिया ॥ ११ ॥

दादू की वाणी सरस, जग की करी पिछाण।
नारायण नर में रमै, बूंद समद परमाण ॥ १२ ॥

दादूदयाल की सरस वाणी ने ससार को पहिचाना। बूँद और समुद्र की तरह, नरमें नारायण रमा हुआ है ॥१२ ॥

काव्य कुंज छाँया सुखद, रच्यो विहारी बाग।
रोम रोम रस ऊमट्यो, हिव सरस्यो अनुराग ॥ १३ ॥

काव्य कुंज का सुखद छाया वाला बाग विहारी ने लगाया। रोम रोम में रस उमड़ पड़ा और हृदय प्रेम सरस हो गया ॥ १३ ॥

आरजकुल को राजकवि, दुरसा जी सरणाम।
जस गायो परताप को, थरप्यो अम्मर नाम ॥ १४ ॥

दुरसाजी आर्यकुल के राजकवि हैं। उन्होंने प्रतापसिंह का यश गाया और अमर नाम स्थापित किया ॥ १४ ॥

कविता को भूसण भयो, कवि भूसण सरणाम।
दुरसा जी ज्यूँ ऊतर्‌या, आरजकुल के काम ॥ १५ ॥

सुप्रसिद्ध भूषण कवि कविता का भूषण हुआ—मानों आर्यकुल के लिए दुरसाजी ने अवतार धारण किया ॥ १५ ॥

कविवर ईसरदास को, यो साचो सनमान।
इमरत को झरणो नयो, आयो राजसथान ॥ १६ ॥

कविवर ईसरदास का यह सच्चा सम्मान है—राजस्थान में नया अमृत का झरणा आया ॥ १६ ॥

नन्दन वन को कल्पतरू, राजा भोज समान।
जोधाणो जसवन्त वो, कविकुल को अभिमान ॥ १७ ॥

जोधपुर के जसवन्तसिंह नन्दनवन के कल्पतरु थे, राजा भोज के समान थे और कविकुल के अभिमान थे ॥ १७ ॥

मीरों की रसधार ज्यूँ, जमना जी के तीर।
वंसी वाजे स्याम की, रूक रूक चाले तीर ॥ १८ ॥

मीरों की रसधारा मानों यमुना के किनारे श्याम की बंसी बज रही हो और पानी रुक रुक कर चलता हो ॥ १८ ॥

जमनाजी के तीर जा, गायो अम्मर गान।
खग, मृग, पाहन, देव, नर, मोह्या कवि रसखान ॥१९॥

कवि रसखान ने यमुना के तीर जा कर अमरगान गाया और खग, मृग, पत्थर, देव तथा नर सब को मुग्ध कर लिया ॥ १९ ॥

राजस्थानी रेत में, बेसुध भयो सरीर।
आय कालजे में लगी, पदम भगत की पीर ॥२०॥

पद्मभक्त की पीर कलेजे में आकर लगी कि राजस्थानी रेत में बेसुध होकर शरीर लोटने लगा ॥ २० ॥

विट्ठल को गायक अमर, आप तिर्‌यो संसार।
जगत उधारण खोलगो, प्रेमलोक को द्वार ॥२१॥

विट्ठल के अमर गायक तुकाराम ससार से आप भी तिरे और जगत के उद्धार के लिए भी प्रेमलोक का मार्ग खोल गए॥ २१॥

नरसीलो बाँको भगत, ममता को दरियाव।
जग में ल्यायो स्याम नैं, भात भरण कै चाव ॥२२॥

नरसी जी की भक्ति अनन्त है। वे ममता के सागर हैं। भात भरने के लिए, वे इस ससार में कृष्णको ले आए॥ २२॥

नई राग में गीत नव, नया आशा-विस्वास।
रामकथा को रूप दे, प्रगट्यो कृत्तीवास ॥२३॥

नई राग में, नया गीत और नए आशा तथा विश्वास – कृत्तिवास ने रामकथा के रूप में प्रगट किया॥ २३॥

राधा माधव प्रेमरस, चाल्यो गोपी रूप।
चन्द्रसखी की टेर में, प्रगट्यो आज अनूप ॥२४॥

राधा माधव के प्रेमरस को गोपी के रूप में चखा था, वही आज चंद्रसखी के गीतों में प्रगट हुआ॥ २४॥

चारण कुल को सेवरो, कविवर बाँकीदास।
ज्यांरै गीता सूँ गई, ईं मरूधर की प्यास ॥२५॥

कविवर बांकीदास चारण कुल के शिरोमणि थे। उनके गीतों से मरुधर की प्यास मिट गई॥ २५॥

राजस्थानी राजियो, क्यूं न होय सरणाम।
सोनै में हीरा जड़्या, चारण किरपाराम ॥२६॥

राजस्थान का राजिया सुप्रसिद्ध क्यों न हो। चारण कृपारामजी ने सोने में हीरे जड़ दिए हैं॥ २६॥

नस नस चिमकी बीजली, आयो जोर उफाण।
चारणजी कै चँटक्यां, जाग्यो राजसथान ॥२७॥

नस नस में बिजली चमक उठी, एक जोर का उफान आया। चारणजी की चुटकी से राजस्थान जाग उठा॥ २७।

पाछो आयो न्यानणो, पाछी आई जोत।
या प्रसाद की साधना, सतजुग तणो उदोत ॥२८॥

वह प्रकाश फिर आया, वह ज्योति फिर आई। प्रसादजी की साधना तो सत्ययुग का प्रकाश है ॥ २८ ॥

धन भारत की चन्द्रिका, धन भारत को बीण।
धन भारत की कोकिला, काव्य समद रस मीन ॥२९॥

भारत की चद्रिका धन्य है, भारत की वीणा धन्य है, भारत की कोकिला धन्य है, काव्य समुद्रकी मीन सरोजिनी देवी धन्य है ॥ २९ ॥

रवि बाबू ऊंचा घणा, नीचा से सनमान।
जल की धारा के करै, जलदाता को मान ॥३०॥

रवीद्रनाथ बहुत ऊँचे हैं और सम्मान सभी बहुत नीचे हैं। पानी की धारा जलदाता बादल का क्या मान कर सकेगी ? ॥ ३० ॥

लालादे

मृत्यु—

पाछै झीणो च्यानणो, आगै घोर अँधेर।
जातां देखी मौत नै, लालादे की लेर ॥ १ ॥

पीछे थोड़ा सा प्रकाश और आगे घोर अंधकार! मैंने लालादे के पीछे मृत्यु को जाते हुए देखा ॥ १ ॥

गाभा धोळा स्याम तन, आंख्यां दो विकराल।
ठण्डी जाणू बरफ सी, चक्कर खाती चाल ॥ २ ॥

कपड़े सफेद, शरीर काला, बर्फके समान शीतल दो विकराल नेत्र, और चक्कर खाती हुई सी उसकी चाल ॥ २ ॥

समदर मांसूं नीकल्यो, वो मोती अनमोल।
पाछो समदर मां मिल्यो, दो यक दिन हँसबोल ॥ ३ ॥

वह अनमोल मोती समुद्र में से निकला था और दो दिन में हँस बोल कर वापिस समुद्र में ही मिल गया। ॥ ३ ॥

लालादे तो कुंज सी, गई गगन कै मांय।
दिन दिन दूणी चाल सूँ, आगै आगै जाय ॥ ४ ॥

लालादे कुंज पक्षी के समान आकाश में उड़ गई और दिन प्रति दिन दुगुनी चाल से आगे ही आगे चली जाती है ॥ ४ ॥

फागण आसी जायसी, आसी चैत हजार।
पण वो फूल गुलाब को, कदे न दूजी बार ॥ ५ ॥

फाल्गुण आएगा और जाएगा। हजारों बार चैत्र भी आएगा पर वह गुलाब का फूल दूसरी बार नहीं आएगा ॥ ५ ॥

कालचक्र नै देखतां, मन ज्यावै थर्राय।
ईं पर चढ़ कर चालणो, ओर न एक उपाय ॥ ६ ॥

कालचक्र को देख कर मन थर्रा उठता है, पर इसी पर चढ़ कर चलना होगा, दूसरा कोई उपाय ही नहीं है ॥ ६ ॥

यो सोनै को दिन गयो, या चाँदी की रात।
फुलड़ा विनती धण गई हँसती करती वात ॥ ७ ॥

वह सोने का दिन और वह चाँदी की रात—सब चले गए, जब फूल चुनती हुई हँसमुख प्रियतमा चली गई ॥ ७ ॥

मिलणो तो दिन च्यार को, ओर अनंत वियोग।
तारापथ पर चालणो, यो माया को जोग ॥ ८ ॥

मिलन तो दो दिन का है और वियोग अनंत है। माया का यही सम्बन्ध है कि तारापथ पर चलना ही होगा ॥ ८ ॥

तारै सूँ तारो बँध्यो, बंध दिये मजबूत।
नर नै नर सू बाँधियो, लेकर काचो सूत ॥ ९ ॥

तारे के साथ दूसरा तारा दृढ़ बंधन में बंधा है। परन्तु एक आदमी के साथ दूसरा आदमी कच्चे सूत से बाँधा गया है ॥ ९ ॥

सुरगापत के बाग तूँ, तोड़ै फूल बसेक।
भवसागर तट में खड्यो, काँकर सोरूँ नेक ॥ १० ॥

तूँ स्वर्ग के बाग में सुन्दर सुन्दर फूल चुन रही है और मैं भवसागर के किनारे खड़ा कंकर बटोर रहा हूँ ॥ १० ॥

छाया पथ सूँ तूँ गई, पूगी परलै पार।
क्याँ सूँ अब पतरो लिखूँ, लेज्या कुण असवार ॥ ११ ॥

तूँ छायापथ से चली गई और दूसरे पार पहुँच गई। मैं कैसे पत्र लिखूँ और उसे कौन सवार उधर ले जाए ? ॥ ११ ॥

स्वप्न—

फूलाँ के संसार में, सोरभ सूँ सरसाय।
या धरती इमरतमयी, विधना रची सुभाय ॥ १२ ॥

फूलों का संसार सौरभ से सरस हो रहा है। इस पृथ्वी को विधाता ने अमृतमय बनाया है। १२ ॥

सीतल मन्द सुगन्धयुत, हीय हुलासण वाय।
आवै जावै मोद मैं, फूली नाँय समाय ॥ १३ ॥

शीतल, मन्द और सुगंधित पवन हृदय को प्रसन्न करती हुई आनंद में आती जाती है। वह फूली नहीं समाती ॥ १३ ॥

झरणा उतरै प्हाड़ सूँ, गाता कलकल गान।
चमचम करता नाचता, माता मोद महान ॥ १४ ॥

कलकल गीत गाते हुए, चमचम करके नाचते हुए और आनंद में मस्त झरणे पहाड़ से उतर रहे हैं ॥ १४ ॥

हरियाली कै राज मैं, रंग विरंगा फूल।
सरसावै आनंद रस, नाच रंग में भूल ॥ १५ ॥

हरियाली के राज्य में अनेकों रंगों के फूल नाचरंग में भूल कर आनंद रस में मग्न हो रहे हैं ॥ १५ ॥

रूँख बेल आनंद मैं, नाच नाच हरखाय।
तन मन सूँ स्वाधीन सुख, त्रितरावै सरसाय ॥ १६ ॥

पेड़ और लताएँ आनंदमें नाच नाच कर भूल रहे हैं। वे तन मन से स्वाधीनता का सुख सरस होकर फैला रहे हैं ॥ १६ ॥

इमरत की बूँदा पडै, चन्द्रलोक सूँ आय।
धरती न्हावै मोद मैं, अंग अंग पुलकाय ॥ १७ ॥

चन्द्रलोक से अमृत की बूंदें आकर गिर रही हैं। धरती आनन्द में नहा रही है। उनका अंग प्रत्यंग पुलकित हो रहा है ॥ १७ ॥

सीतलता सोभा घणी, रसधारा की खाण।
मोद तरंग निकुंज मैं, छाई एक महान ॥ १८ ॥

शीतलता और शोभा से युक्त रसधारा की खान इस निकुंज में एक महान मोद-तरंग छाई हुई है ॥ १८ ॥

छाँया ओर प्रकाश का, ठौर ठौर आनंद।
शान्ति औ' स्वर की मची, मोद तरंग अमंद ॥ १९ ॥

ठौर ठौर पर छाया और प्रकाश का आनन्द फैला है, शान्ति और स्वर की अमंद मोद-तरंग छाई है ॥ १९ ॥

पान पान को मन सरस, कण कण हीय हुलास।
रोम रोम मैं रम रही, फूलाँ तणी सुवास ॥ २० ॥

पत्ते पत्ते का मन सरस है। कण कण के हृदय में आनन्द है। फूलों की गंध रोम रोम में रमी हुई है ॥ २० ॥

स्वप्न लोक को परम सुख, नाँय बखाण्यो जाय।
हिरदे तणे उजास नैं, नैण निलोकै नाँय ॥२१॥

स्वप्नलोक के परम सुख का वर्णन नहीं किया जा सकता। हृदय के प्रकाश को नेत्र नहीं देख सकते ॥ २१ ।

समस्वर के संगीत मे, लालादे हो लीन।
बैठी एक निकुंज मैं, गावै मोद प्रवीण ॥२२॥

समस्वर के संगीत में लीन होकर लालादे एक निकुंज मे आनन्दमय गीत गा रही है। २२ ॥

संगीत—

हिय तन्त्री के तार सू, मिल्या बीण का तार।
कंठाँ के आलाप मैं, समस्वर को संसार ॥२३॥

हृदय-तंत्री के तारो से वीणा के तार मिले हुए हैं। कंठों के आलाप मे समस्वर का संसार तैयार हो गया है। २३ ॥

झरणाँ की कलकल ध्वनी, एक राग मैं आय।
लालादे री बीण मैं, मोद रूप सरसाय ॥२४॥

झरणों की कलकल ध्वनि एक राग मे आकर लालादे की वीणा के साथ आनन्दमय हो रही है ॥ २४ ॥

पान फूल सूँ नीसरै, एक मधुर रसधार।
लालादे की राग मैं, सरसावै संसार ॥२५॥

पत्तों और फूलों से एक मधुर रसधारा निकल रही है। वह लालदे की राग मे मिलकर ससार को सरस बना रही है। २५ ॥

चाँद किरण को गीत सुख, लालादे की बीण।
समस्वर के संगीत मैं, सरसै मोद प्रवीण ॥२६॥

चाँद की किरणो का गीतसुख लालदे की वीणा में मिलकर समस्वर सगीत को आनन्दपूर्ण रचना कर रहा है ॥ २६ ॥

कण कण सूँ धुन नीसरै, लालादे की राग।
मिलकर मोद तरंग मैं, सरसावै अनुराग ॥२७॥

कण कण से ध्वनि निकल कर लालादे की राग मे मिल कर आनन्द के साथ प्रेमपूर्ण हो रही है। २७ ॥

लालादे की राग में, तारों को संगीत।
आय मिल्यो आनन्दमय, यो मनभावन गीत ॥ २८ ॥

लालादे की राग में तारों का गीत आकर आनन्दमय मनभावन सङ्गीत रच रहा है ॥ २८ ॥

सीली सीली पून की, एक मधुर रस राग।
समस्वर कै संगीत में, आय मिली सोभाग ॥ २९ ॥

शीतल पवन में से एक मधुर रसमयी राग निकल रही है और सौभाग्य-मय समस्वर के सगीत की सृष्टि करती है ॥ २९ ॥

नाच नाच कर मोद में, या हरियाली दूब।
मिलकर ऊँची राग सूँ, गावै समरस खूब ॥ ३० ॥

हरी दूब आनन्दमें नाच नाच कर ऊँची रागसे समस्वरमें गीत गा रही है ॥३०॥

लालादे की कुंज को, यो संगीत महान।
सरसायो संसार में, एकरूप रसखान ॥ ३१ ॥

लालदे की कुञ्ज का यह महान सङ्गीत एकरूप होकर रसखान की तरह ससार में सरस हो रहा है ॥ ३१ ॥

पीथल देख्यो दूर सूँ, लालादे को साज।
मंत्रमुग्ध आलोकमय, भयो रंक सूँ राज ॥ ३२ ॥

पृथ्वीराज ने दूर से लालदे का साज देखा। वह मन्त्रमुग्ध और प्रकाशमय हो कर रक से राजा हो गया ॥ ३२ ॥

अंग अंग में आ रमी, लालादे की राग।
आयो सरस निकुंज में, सरसायो अनुराग ॥ ३३ ॥

लालादे की राग उसके अग में आकर रम गई। वह उस रसमयी निकुंज में आया और उसका प्रेम उमड़ पड़ा ॥ ३३ ॥

ज्ञानोदय—

चालो थण घर आपणै, छोडो यो संसार।
हेरत हेरत में थक्यो, आ पूग्यो ईं पार ॥ ३४ ॥

प्रियतमे, अपने घर चलो और इस ससार को छोड़ो। खोजता खोजता मैं थक गया हूँ और अब इस पार पहुँचा हूँ ॥ ३४ ॥

सोनै को संसार वो, ऊँचा मोद अपार।
थारै ई संगीत सूँ, आसी इमरत धार ॥ ३५ ॥

'वह संसार स्वर्णमय है। उसके आनंद अपार हैं। तुम्हारे इस संगीत से वहाँ अमृतधारा बह चलेगी ॥ ३५ ॥

बाग बगीचा मोकला, हींडो रेसम डोर।
सरसावै आनन्द सुख, वै सांवण का लोर ॥ ३६ ॥

बाग बगीचे बहुत हैं। रेशम का झूला है। सावण के बादल हैं। आनंदसुख सरस हो उठेगा ॥ ३६ ॥

फूलां के संसार में, फव्वारां की धार।
जलकेली को परम सुख, जिन्दगानी को सार ॥ ३७ ॥

फूलों के संसार में फव्वारों की धारा चलती है। जलकेलि का परम सुख इस जीवन का सार है।

रंगम्हैल को च्यानणो, सोरभ को संसार।
मारूणी कै गीत सूँ, चालै रस को धार ॥ ३८ ॥

रंगमहल का प्रकाश और सुगंध का संसार। प्रियतमा के गीत से वहाँ रसधारा बह चलेगी ॥ ३८ ॥

नोकर चाकर मोकला, छत्तीस व्यंजन भोग।
तन मन में मद उफणै, दूर करै सै रोग ॥ ३९ ॥

बहुत से नौकर चाकर हैं। छत्तीस प्रकार के व्यंजन हैं। तन मन में मद उफन पड़ेगा और सब रोग दूर हो जाएँगे। ॥ ३ ॥

सुरा ओर सौंदर्य सूँ, मिल्यो संगीत सुजान।
धरती पर इमरत रच्यो, चाल करां मिल पान ॥ ४० ॥

सुरा, सौन्दर्य और संगीत ने मिल कर संसार में अमृत तैयार किया है। चलो, मिलकर उसका पान करें ॥ ४० ॥

सोरभ ओर प्रकाश दो, अमरतत्त्व मिल एक।
रंगमहल कै मोद की, करसी ऊँची टेक ॥ ४१ ॥

सौरभ और प्रकाश दोनों अमरतत्त्व मिल कर रंगमहल में मोद की परमोच्च सीमा स्थापित करेंगे ॥ ४१ ॥

मारूणी कै रूप में, मिल ढोलै को ओज।
रंगमहल रसधार में, सरसावैं मद ओज॥ ४२॥

प्रियतमा का सौन्दर्य और प्रियतम का ओज दोनों मिल कर रंगमहल में रसमय आनंद की रचना करेगा॥ ४२॥

लालादे तो ना रूकी, नांय रूक्यो संगीत।
ईं धरत्ती का दूसरा, वै दुनियाँ सूं गीत॥ ४३॥

न तो लालादे रुकी और न वह संगीत ही रुका। इस संसार के गीत उस संसार से दूसरे ही हैं॥ ४३॥

पीथल नै चेतो भयो, मन में भरयो उजास।
लालादे कै गीत में, अमरतत्त्व की आस॥ ४४॥

पृथ्वीराज को ज्ञान हुआ। उसके मन में प्रकाश भर गया। लालादे के गीत में अमरतत्त्व दिखाई दिया॥ ४४॥

प्रेमरस—

दूर भया संताप सै, जग का झूठा साज।
राधा माधव प्रेमरस, भयो लीन प्रथीराज॥ ४५॥

तमाम संताप दूर हो गए। संसार का साज असत्य है। पृथ्वीराज राधामाधव के प्रेमरस में लीन हो गया॥ ४५॥

विन्दरावन का अमररस, आय कर्यो सुखपान।
जमना जी कै नीर सूँ, मेटी तीस सुजान॥ ४६॥

विंद्रावन के अमररस को उसने आकर सुख से पान किया और यमुनाजल से अपनी प्यास मिटाई॥ ४६॥

पान पान मे प्रेम रस, कण कण में संगीत।
पीथल कै ही आ रम्या, विन्दरावन का गीत॥ ४७॥

उसे पत्ते पत्ते में प्रेमरस मालूम हुआ। कण कण में संगीत सुनाई पड़ा। पृथ्वीराज के हृदय में विंद्रावन के गीत आ कर रम गये॥ ४७॥

बालकेलि को अमर थल, गोचारण को धाम।
लोट लोट कर रेत में, आज मिल्यो बिसराम॥ ४८॥

यह स्थान कृष्ण की बालकेलि का अमरस्थान है और गोचरण का धाम है। आज इसकी रेत में लोट लोट कर विश्राम मिला ॥ ४८ ॥

जमना जी के नीर में, बिन्द्राबन के मांय।
ब्रज की गलियाँ में सुणी, बंसी तान सुभाय ॥ ४९ ॥

यमुना के पानी में, विंद्रावन में, ब्रज की गलियों में सब जगह बंसी की तान सुनाई दी ॥ ४९ ॥

आयो मथुराधाम में, पीथल सुमत सुजान।
मन की सा तिसना गई, दरसणरस कर पान ॥ ५० ॥

सुमति सुजान पृथ्वीराज मथुराधाम में आया। वहाँ दर्शनरस पान करके उसके मन की तृष्णा मिट गई ॥ ५० ॥

कारजथल भगवान को, तीरथ रूप पुनीत।
पीथल के कानां पड़यो, एक अमर संगीत ॥ ५१ ॥

यह स्थान भगवान का कार्यस्थल है और पवित्र तीर्थ है। वहाँ पृथ्वीराज को अमर संगीत सुनाई पड़ा ॥ ५१ ॥

अब आयो द्वारावती, देख्या अनुपम बाग।
रोम रोम पुलकावली, गद्गद रस अनुराग ॥ ५२ ॥

अब वह द्वारका आया और वहाँ के अनुपम बगीचों को देखा। प्रेम में रोम रोम पुलकित हो गया और वाणी गद्गद हो गई ॥ ५२ ॥

रस रहस्य जाण्यो परम, समझयो सो संगीत।
प्रिया-पुरस के मिलण का, गाया ऊँचा गीत ॥ ५३ ॥

उसने परमरस के रहस्य को समझा और संगीत को भी जाना। फिर प्रकृति और पुरुष के मिलन के उसने गीत गाए ॥ ५३ ॥

जल थल नभ में गीत रस, छाय रह्यो दिन रैन।
पीथल अब जाण्यो सुमत, तन मन को सुख दैण ॥ ५४ ॥

जल, स्थल और नभ में रात दिन तन मन को सुख देने वाला गीत रस छाया है, अब पृथ्वीराज ने उसे समझा ॥ ५४ ॥

पीथल सो नरराज ना, लालादे सी नार।
सोरभ और प्रकाश को, मिल चाली रसधार ॥ ५५ ॥

पृथ्वीराज का पुरुष नहीं हैं और लालादे सी स्त्री नहीं हैं। वह सौरभ और प्रकाश की मिली हुई रसधारा थी ॥ ५५ ॥

पद्मिनी

संवाद—

चर आयो संवाद ले, ओर न कोई आस।
ललना कुल की लाज अब, जौहर व्रत कै पास ॥ १ ॥

दूत संवाद लेकर आया—अब कोई आशा नहीं रही ललनाकुल की लाज अब जौहर व्रत के हाथ है ॥ १ ॥

वा वीरों को सेन अब, ईं धरती पर नांय।
सार दियो ना, सिर दियो, रणखेतां हरखाय ॥ २ ॥

वह वीर सेना अब संसार में नहीं रही। उस युद्धक्षेत्र में सानन्द सिर दे दिया पर तलवार शत्रु को नहीं सौंपी ॥ २ ॥

छत्रीव्रत की पारणा, गई खेत मां होय।
छत्राणी व्रत को भरम, बाकी बच्यो ज सोय ॥ ३ ॥

क्षत्रियव्रत की उचित समाप्ति युद्ध स्थल में हो चुकी। अब क्षत्राणीव्रत का रहस्य पूरा होना बचा है ॥ ३ ॥

मोत सरीखो दूसरो, तोड़ भयो न होय।
गंठ बन्धन की गांठ पण, तोड़ सक्यो ना कोय ॥ ४ ॥

मृत्यु के समान दूसरा तोड़ने वाला और कोई नहीं है परन्तु विवाह के गँठबंधन की गांठ कोई भी नहीं तोड़ सका ॥ ४ ॥

बंस बाप को पूत सूँ, निरमल जगमग होय।
पावन करणी जसमयी, पण कन्या कुल दोय ॥ ५ ॥

पुत्र से पिता का वंश निर्मल और प्रसिद्ध होता है। परन्तु कन्या दोनों कुलों को पवित्र करनेवाली यशोमयी है ॥ ५ ॥

गंगा जमना सुरसती, तीरथ राज प्रयाग।
आद शक्ति कै तेज सूँ, ईं धरती को भाग ॥ ६ ॥

कन्यामें गंगा यमुना और सरस्वती तीनोंका संगम तीर्थराज प्रयाग है। आदि-शक्ति का तेज ही इस पृथ्वी का भाग्य है ॥ ६ ॥

अजर अमर या आतमा, जग जाणै सब कोय।

नाँय मरया अर ना मरै, सदा सहीद निरोग ॥ ७ ॥

सारा संसार जानता है कि यह आत्मा अजर अमर है। शहीद न कभी मरे हैं और न कभी मरेंगे। वे सदैव नीरोग हैं ॥ ७ ॥

सूरज के परकास में, अमर तत्त्व बस एक।

तन मन सूँ स्वाधीन हो, त्यागी बस्या अनेक ॥ ८ ॥

सूर्य के प्रकाश में एक ही अमरतत्त्व है कि अनेक त्यागी तन मन से स्वाधीन होकर उसमें जा बसे हैं ॥ ८ ॥

सती—

सदा सुरंगी देह में, आई नई तरंग।

रोम रोम माँ जोत नव, प्रगटी अनुपम ढंग ॥ ९ ॥

परम सुन्दर शरीर में एक नई तरंग दौड़ गई और रोम रोम में नए ढंग से अनुपम ज्योति प्रगट हुई ॥ ९ ॥

जगती के परकास में, नूतनती उमरसाय।

तन में मन में ध्यान में, गयो अमर रस छाय ॥ १० ॥

संसार के प्रकाश में एक नूतनता सरसा उठी। तनमें, मनमें और ध्यान में अमरस छा गया ॥ १० ॥

आभूसण मुलक्याँ घणा, अर मुलक्या में अंग।

सतियाँ को सिणगार सत, सदा कसूँभी रंग ॥ ११ ॥

गहने हँसने लगे, अंग प्रत्यंग हँसने लगे। सती का शृंगार सत्य है। वह सदैव प्रेममयी कसूभी रंग में रहती है ॥ ११ ॥

चिता जली धक धक भयो, सजकर चाली धार।

नारी कै सौन्दर्य को, हरख उठ्यो संसार ॥ १२ ॥

चिता जली। धक धक लपटें उठीं। शिखा सज कर चल पड़ीं। नारी जाति के सौन्दर्य का संसार प्रसन्न हो उठा ॥ १२ ॥

पगकी गत पर वार दूयूँ, ई जग का उपमान।

आत्मत्याग को नाच ज्यूँ, धरती पर छविमान ॥ १३ ॥

उनके पैरोंकी गति पर इस संसारके उपमान न्यौछावर हैं—मानों आत्मत्याग का नृत्य संसार में छविमान हो ॥ १३ ॥

एक भरोसो एक तप, एक आस विसवास।
ई धरती को च्यानणो, गँठबंधन कै पास ॥ १४ ॥

एक भरोसा, एक तप, एक आशा और एक ही विश्वास है। इस संसार का प्रकाश गँठबंधन के पास है ॥ १४ ॥

जोगीजन को त्यागतप, ललना कुल में आय।
आर्यधरम की अमरधज, ऊँचो लई उठाय ॥ १५ ॥

योगी लोगों के त्यागतप ने ललना कुल में आकर आर्यधर्म की अमरध्वजा को ऊँचा उठा लिया ॥ १५ ॥

आर्यवीर कै तेज को, जग जाण्यो सनमान।
ललनाकुल कै तेज को, कोई माप न मान ॥ १६ ॥

आर्यवीरों के तेज के सम्मान को संसार जानता है, पर ललनाकुल के तेज का कोई नाप तोल नहीं ॥ १६ ॥

जौहर—

सतियाँ सत सूँ ऊजली, चाली आज चितांह।
सूरज की किरणाँ चली, ज्यूँ अस्ताचल छांह ॥ १७ ॥

सतियाँ सत्य से उज्ज्वल होकर आज चिताकी तरफ चली, मानों सूर्य की किरणें अस्ताचल की छाया की ओर चली ॥ १७ ॥

पाताळोदर गिर गुफा, चली पवन तरंग।
चाली गंगा लहैर कै, समदर धार उमंग ॥ १८ ॥

अथवा पाताल के पहाड़ों की गुफा में पवन तरंग चली या गंगा की लहर समुद्र की तरफ उमंग सहित चली ॥ १८ ॥

कै बूँदाँ आकास की, चाली रेगिसतान।
सत कै मारग पग धर्‍या, कै स्मृतियाँ छविमान ॥ १९ ॥

या आकाश की बूँदें रेगिस्तान की तरफ चली या छविमान स्मृतियों सत्यमार्ग की तरफ पैर बढ़ाया ॥ १९ ॥

कै कूँजाँ की डार या, धारी ऊँची आस।
सामवेद की तान कै, चाली हुलस अकास ॥ २० ॥

या कूँजों की पंक्ति ने ऊँची आशा की या सामवेद की तान सानंद आकाश की तरफ चली ॥ २० ॥

अगनदेव आनन्दमय, चन्नण घणो अरोग।
मनवांछित घ्रतपान कर, धरती को रसभोग ॥ २१ ॥

अग्नि देवता ने आनद के साथ बहुत सा चन्दन खा कर मनवाछित घृतपान किया फिर धरती का रस भोगने लगा ॥ २१ ॥

आर्यजाति संसार में, कर अणगिणती याग।
जौहरव्रत में सत्यमय, उपजायो अनुराग ॥ २२ ॥

आर्यजाति ने ससार में अगणित यज्ञ किए, फिर सत्यमय जौहर व्रत में अनुराग प्रगट किया ॥ २२ ॥

सतियाँ के सत सूँ जली, धक धक चिता अनेक।
सतियाँ के सत में मिली, धन धन जोत बसेक ॥ २३ ॥

सतियो के सत् से अनेक चिताएँ धक धक् जलने लगीं। सतियों के सत् में एक विशेष ज्योति मिली। उन्हें धन्य है ॥ २३ ॥

सकल काल को, जात को, सकल लोक को पुन्य।
छायो राजस्थान में, कर भारत नै धन्य ॥ २४ ॥

समस्त काल समस्त जाति और समस्त लोक का पुण्य भारत को धन्य करके राजस्थान में प्रगट हुआ ॥ २४ ॥

अंत—

ई महलाँ मे मोद की, आसी घणी उमंग।
ओराँ के परताप की, छासी तेज तरंग ॥ २५ ॥

इन महलो में आनन्द की बहुत उमग उठेगी और दूसरों के प्रताप की तेज तरग छाएगी। २५ ॥

ई बागाँ में मोज की, आसी घणी बहार।
ओराँ के सनमान की, छासी इमरतधार ॥ २६ ॥

इन बगीचों में आनन्द की बहुत बहार आएगी और दूसरों के ही सम्मान की अमृतधारा बहेगी ॥ २६ ॥

ताळाँ मे जळकेलि को, सरसासी आनंद।
ओराँ के रसरूप को, छासी रंग अमन्द ॥ २७ ॥

इन तालाों मे जल कोलि का आनन्द सरस होगा और दूसरों के ही रसरूप का गहरा रंग छाएगा ॥ २७ ॥

ई 'खेतां को जायसी, ओरां कै रससार।
ओरां कै बल दर्प की, रमसी घणी सिकार ॥ २८ ॥

इन खेतों का रससार दूसरों को ही मिलेगा। दूसरों के ही बल और दर्प की यहा धाक पड़ेगी । २८ ॥

पण भूलै संसार ना, वीरां को सिणगार।
मर कर छोडै खेत में, करै मौत पर वार ॥ २९ ॥

परन्तु ससार वीरों के शृंगार को भूल नहीं सकता। व मरकर ही रणक्षेत्र को छोड़ते हैं और मौत पर भी वार करते है ॥ २९ ॥

नारी ना संसार में, पुरस तणो रसभोग।
धरती ओर अकास को, राम जुड़ायो जोग ॥ ३० ॥

नारी ससार में पुरुष का रसभोग नहीं है। पृथ्वी और आकाश का सम्बन्ध ईश्वरीय स्थापना है ॥ ३० ॥

नारी को सौन्दर्य ना, रचना को लावण्य।
परम गन्ध उद्यान की, हिरदै को सत पुण्य ॥ ३१ ॥

नारी का सौन्दर्य रचना का लावण्य नहीं है। वह उद्यान की परम गध है और हृदय का पुण्यमय सत्य है ॥ ३१ ॥

जयति जयति नरसिंह जय, जय नारी ओतार।
राजस्थानी ख्यात को, गूँज उठ्यो संसार ॥ ३२ ॥

राजस्थानी इतिहास का ससार गूँज उठा—नरसिंह की जय हो, नारी अवतार की जय हो ॥ ३२ ॥

प्रकाश—

तन की सोभा ना रही, रह्यो न वो उद्यान।
पण सोरभ संसार में, महक रही मुदमान ॥ ३३ ॥

शरीर की शोभा नहीं रही और वह उद्यान भी नहीं रहा, परन्तु फिर भी ससार में आनन्दमयी सौरभ फैली हुई है ॥ ३३ ॥

बाकी बच्यो न आज दिन, भू पर एक निसान।
स्पार्टा की ललना सदा, पण जग में द्युतिमान ॥ ३४ ॥

आज धरती पर एक निशान भी शेष नहीं बचा, परन्तु फिर भी स्पार्टा की ललना संसार में सदैव द्युतिमान है ॥ ३४ ॥

बाकी बच्यो न आज दिन, भू पर एक निसान।
पण ललना करथेज की, जगती में छविमान ॥ ३५ ॥

आज धरती पर एक निशान भी शेष नहीं बचा परन्तु फिर भी कार्थेज की ललना संसार में छविमान है ॥ ३५ ॥

सत की धारा जोर की, बड़ मिनखां रा काम।
देस काल अर जात का, बाँध न लागे लाम ॥ ३६ ॥

सत्य की धारा बड़ी बलवती है। इसी तरह बड़े लोगों के काम हैं। उनको देश, काल और जाति के बंधन नहीं लगते ॥ ३६ ॥

सतवादी के नाम को, स्मारक सत को काम।
ज्यासूँ आ धरती बणी, मानवकुल को धाम ॥ ३७ ॥

सत्यवादी के नाम का स्मारक सत्य का काम ही है, जिससे यह धरती मानव-कुल का आश्रय बनी हुई है ॥ ३७ ॥

पुरातत्व में जा मिल्यो, यो चित्तोड़ी राज।
पण जौहर के त्याग को, सदा सुरंगो साज ॥ ३८ ॥

चाहे चित्तौड़ का राज्य पुरातत्त्व की वस्तु हो जाए, परन्तु जौहर के त्याग का साज सदा ही सुरंग रहेगा ॥ ३८ ॥

ख्यात रहो या ना रहो, रहो न राज समाज।
पण जौहर के त्याग को, सदा सुरंगो साज ॥ ३९ ॥

चाहे इतिहास और राज समाज रहे या न रहे परन्तु जौहर के त्याग का साज सदा ही सुरंग रहेगा ॥ ३९ ॥

जय दुर्गा जय सारदा, जय लक्ष्मी रति धन्य।
जय जय राणी पदमणी, राजस्थान अनन्य ॥ ४० ॥

दुर्गा की जय हो, शारदा की जय हो, लक्ष्मी की जय हो, रति को जय हो, महारानी पद्मिनी की जय है। राजस्थान अनुपम है ॥ ४० ॥

मीरां

नृत्य—

आज सुरंगो दिन भयो, मीरां ले खड़ताल।
नाची हरि के ध्यान में, प्रीत पुराणी पाल ॥ १ ॥

आज का दिन बड़ा अच्छा उदय हुआ कि मीरां हाथ में खड़ताल लेकर अपने पुराने प्रेम, हरी के ध्यान में नाचने लगी ॥ १ ॥

मीरां नाची प्रेमरस, संग लिया गोपाल।
रास रंग भू पर नयो, आयो इमरत ताल ॥ २ ॥

मीरां गोपाल के साथ प्रेमरस के कारण नाचने लगी अमृत—सरोवर के समान नया रासरंग धरती पर आया ॥ २ ॥

पुण्यमयी द्वारावती, देवालय सुभधाम।
आज सुरंगो प्रेमरस, काम भयो निष्काम ॥ ३ ॥

द्वारका पुण्यमयी है, देवालय शुभधाम है। आज प्रेमरस सुरंग हो गया। आज काम भी निष्काम हो गया ॥ ३ ॥

अंग अंग लावण्यमय, भयो ज्योति को रूप।
आभा झलकी प्रेम की, मीरां रूप अनूप ॥ ४ ॥

उसके लावण्यमय अंग प्रत्यंग ज्योतिमय हो उठे और प्रेम की आभा झलकने लगी। मीरां का रूप आज अनूप है ॥ ४ ॥

नैणां में ज्योती नई, आई आज सुरंग।
पद पद इमरत साधना, सरसो प्रेम तरंग ॥ ५ ॥

उसकी आंखों में आज नई ज्योति आ गई और पद पद पर अमृत—साधना मालूम दी। प्रेम-तरंग सरस हो उठी ॥ ५ ॥

मुख के मधुरा बोल सूँ, चाली इमरत-धार।
धरती पर संगीत को, प्रगट्यो साचो सार ॥ ६ ॥

मुख के मधुर गीतों से अमृतधारा बह चली। संसार में संगीत का सच्चा सार प्रगट हुआ ॥ ६ ॥

प्रेमतत्व की साधना, अमर गीत को रूप।
देवालय में आज दिन, प्रगट्यो संत अनूप ॥ ७ ॥

आज देवालय मे अनुपम संत प्रगट हुआ। उसके प्रेमतत्व की साधना और अमर गीत का रूप बहुत उन्नत है ॥ ७ ॥

प्रतिध्वनि—

जल तरंग हरखाय अत, नाची समँदर माँय।
एक एक के ऊपरां, झूल झिलोरा खाय ॥ ८ ॥

जल तरंग आनंद से समुद्र में नाचने लगी एक दूसरी के ऊपर झूल झूल कर आनंद मनाने लगी ॥ ८ ॥

पवन तरंग प्रमोदमय, नभमंडल के माँय।
थिरक उठी रस रंग में, अंग अंग सरसाय ॥ ९ ॥

पवन—तरंग नभमंडल में आनन्दमयी होकर, अंग प्रत्यंग सरसा कर, रस रंग में थिरकने लगी ॥ ९ ॥

तारामण्डल सूँ नई, निकसी अनुपम राग।
इमरतमय मनभावनी, प्रगटायो अनुराग ॥ १० ॥

तारामण्डल से अमृतमय मनभावनी अनुपम राग निकल कर अनुराग प्रगट करने लगी ॥ १० ॥

फूल्या फूल सुहासमय, धरती को अनुराग।
प्रगट भयो संगीत सो, सौरभ रूप सुहाग ॥ ११ ॥

धरती का अनुराग स्मेरमुख फूलों के रूप में प्रगट हुआ। सौरभ, रूप और सौभाग्य उस संगीत में दिखाई दिये ॥ ११ ॥

परवत हरख्या मोद में, साखा कम्पित गाछ।
लताबेल आनंद में, धुन छेडी मन आछ ॥ १२ ॥

पर्वत मोद में फूल उठे। पेड़ों की शाखाएं हिलने लगी। लता बेल ने प्रसन्न होकर अच्छी तान छेड़ी ॥ १२ ॥

पंछी मोद तरंग में, छेडी इमरत तान।
एक एक सूँ ऊपरां, प्रगटायो सनमान ॥ १३ ॥

पक्षियों ने मोद की तरंग में अमृतमय तान छेड़कर एक से आगे एक ने सम्मान प्रगट किया ॥ १३ ॥

सदा ज्योतिमय शान्तिमय, सौरभमय संसार।
तन में मन में ना करे, अंकुर रूप विकार ॥ २७ ॥

वह संसार सदैव ज्योतिमय शान्तिमय और सौरभमय है, परन्तु तन या मन में कोई विकार अंकुरित नहीं होता ॥ २७ ॥

फूलां हरख न ऊपजै, कांटा ना संताप।
सदा आपमय सत्यमय, सदा ज्योतिमय आप ॥ २८ ॥

उसके फूलों से आनंद पैदा नहीं होता और काँटों से कष्ट नहीं होता। वह सदैव आपमय है, सत्यमय है, ज्योतिमय है और वह आप ही है ॥ २८ ॥

आपमय—

मीरां मिलगी राम में, ज्यूं अनंत में सान्त।
ज्यूँ ससीम निस्सीम में, यो अभेद एकान्त ॥ २९ ॥

मीरां राम में मिल गई मानों अनन्त मे सान्त मिला हो या निस्सीम में ससीम मिला हो। यह एकान्त अभेद है ॥ २९ ॥

ज्यूँ पाणी की बूँद मन, धार अनोखो नेम।
सँमदर मांही आ मिली, सोच पाछलो प्रेम ॥ ३० ॥

जिस प्रकार पानी के बूँद अनोखे नियम को धारण करके और पिछले प्रेम को सोच कर समुद्र में आ मिली हो ॥ ३० ॥

वायूमण्डल में ज्यूँ मिली, कोई पवन तरंग।
आयो देख्यो आप में, लियो पुराणो ढंग ॥ ३१ ॥

जैसे कोई पवनतरंग वायुमण्डल में समा गई हो और अपने मे आपको देख कर पुराना ढंग लिया हो ॥ ३१ ॥

एक पतंगो ज्यूँ मिल्यो, परम ज्योति में आय।
समरस और अभेद को, जाण्यो मरम लुभाय ॥ ३२ ॥

जैसे एक पितंगा परमज्योति में आ मिली हो और उसने प्रसन्न हो कर

अथवा अच्छी तरह फूल कर कुम्हलता लहलहाने लगी हो अथवा आकर्षण केन्द्र पवन-तरग से प्रचलित हो गया हो ॥ २० ॥

चन्द्रकला धरं देह कें, आई भू पर आज।
आभामय संतापहर, धार अनोखी साज ॥ २१ ॥

अथवा आभामय, ताप हरने वाली चन्द्रकला अनोखा साज धारण करके, सशरीर धरती पर आ गई हो ॥ २१ ॥

मिलन—

द्वारावति कें क्षेत्र में, भयो अचभो आज।
शून्य मिलायो एक पल, मेडतणी को साज ॥ २२ ॥

आज द्वारका मे बड़ा आश्चर्य छाया कि पल भर मे मीराँ शून्य में लीन हो गई ॥ २२ ॥

शून्य भयो संगीत वो, शून्य भई वा देह।
कित सू आयो कित गयो, वो इमरत को मेह ॥ २३ ॥

वह सगीत शून्य मे मिल गया। वह देहशून्य हो गई। वह अमृत का मेह किधर से आया और किधर गया ? ॥ २३ ॥

मंदर बैठ्या संत जन, कोई जाण्यो नाँय।
मीराँ बाई कित गई, जन समाज सरसाय, ॥ २४ ॥

मदिर में बैठे हुए सतों मे से किसी ने नहीं जाना कि जन समाज को सरसा कर मीराँ कहाँ चली गई ॥ २४ ॥

मीराँ पुगी देस ऊँ, ज्यॉरो वायु तरंग।
ना सुख देवै दुख ना, धार अनोखो ढंग ॥ २५ ॥

मीराँ उस देश को चली गई जिसकी वायुतरंग अनोखा ढग धारण करके न सुख देती है और न दुख ॥ २५ ॥

कुण जांण्यो यो रामरस, कुण जाण्यो यो प्रेम।
कुण जाण्यो संगीत यो, नाचरंग को नेम ॥ १४ ॥

इस राम रसको कौन जान सकता है ? इस प्रेम को कौन समझ सकता है ? इस संगीत और नाचरंग के नियम को कौन जान सकता है ? ॥ १४ ॥

आश्चर्य—

चकित दृष्टि सूँ संतजन, देख्यो मंदर मांय।
मेड़तणी को प्रेम रस, नांय बखाण्यो जाय ॥ १५ ॥

संतों ने चकित होकर देखा कि मंदिर में मीरां का प्रेम—रस आज अवर्णनीय है ॥ १५ ॥

दीप सिखा सी ज्योतिमय, उज्ज्वल रूप पुनीत।
देवालय को प्राणरस, दूर कस्यो तम जीत ॥ १६ ॥

वह दीप शिखा के समान उज्ज्वल, पुनीत और ज्योतिमय थी। उस देवालय के प्राण रस ने तम को जीत कर दूर भगा दिया ॥ १६ ॥

देवनदी को स्रोत के, दूर कस्यो अंधार।
इमरतमय सरसावणो, ल्यायो पुण्य अपार ॥ १७ ॥

अथवा देवनदी के स्रोत ने अंधकार को मिटा दिया हो और अमृतमय, सरस, अपार पुण्य ले आया हो ॥ १७ ॥

मिलन राग को चित्र के, चित्रित कस्यो सुजान।
छाया ओर प्रकाश को, गति को कर संधान ॥ १८ ॥

अथवा किसी चतुर चित्रकारने छाया, प्रकाश और गति का संधान करके मिलन-राग का चित्र खींचा हो ॥ १८ ॥

के वंसी गोपाल की, बाज रही सुखदैन।
इमरतधार चलावणी, तम-हरणी चित चैन ॥ १९ ॥

या गोपाल की सुखदायक, अमृतधारा चलाने वाली, तम मिटाने वाली, चैन देने वाली वंशी बज रही हो ॥ १९ ॥

कल्पलता के लहलही, फूली आज सुरंग।
आकरसण को केन्द्र ज्यूँ, प्रचलित पून तरंग ॥ २० ॥

अथवा अच्छी तरह फूल कर कल्पलता लहलहाने लगी हो अथवा आकर्षण का केन्द्र पवन-तरंग से प्रचलित हो गया हो ॥ २० ॥

चन्द्रकला धरं देह के, आई भू पर आज।
आभामय संतापहर, धार अनोखी साज ॥ २१ ॥

अथवा आभामय, संताप हरने वाली चन्द्रकला अनोखा साज धारण करके सशरीर धरती पर आ गई हो ॥ २१ ॥

मिलन—

द्वारावति के क्षेत्र में, भयो अचंभो आज।
शून्य विलायो एक पल, मेड़तणी को साज ॥ २२ ॥

आज द्वारका में बड़ा आश्चर्य छाया कि पल भर में मीराँ शून्य में लीन हो गई ॥ २२ ॥

शून्य भयो संगीत वो, शून्य भई वा देह।
कित सूं आयो कित गयो, वो इमरत को मेह ॥ २३ ॥

वह संगीत शून्य में मिल गया। वह देहशून्य हो गई। वह अमृत का मेह किधर से आया और किधर गया? ॥ २३ ॥

मंदर बैठ्या संत जन, कोई जाण्यो नाँय।
मीराँ बाई कित गई, जन समाज सरसाय, ॥ २४ ॥

मंदिर में बैठे हुए संतों में से किसी ने नहीं जाना कि जन समाज को सरसा कर मीराँ कहाँ चली गई ॥ २४ ॥

मीराँ पूगी देस ऊँ, ज्याँरो वायु तरंग।
ना सुख देवै दुख ना, धार अनोखो ढंग ॥ २५ ॥

मीराँ उस देश को चली गई जिसकी वायुतरंग अनोखा ढंग धारण करके न सुख देती है और न दुःख ॥ २५ ॥

फूलै फूल अनंत पण, ना विराग ना राग।
जन मन चालै ना कोई, ना धारै अनुराग ॥ २६ ॥

वहाँ अनंत फूल फूलते हैं, परन्तु न उनसे राग है और न वैराग्य। न किसी व्यक्ति का मन चलता है, न कोई प्रेम धारण करता है ॥ २६ ॥

सदा ज्योतिमय शान्तिमय, सौरभमय संसार।
तन में मन में ना करें, अंकुर रूप विकार ॥ २७ ॥

यह संसार सदैव ज्योतिमय शान्तिमय और सौरभमय है, परन्तु तन या मन में कोई विकार अंकुरित नहीं होता ॥ २७ ॥

फूलाँ हरख न ऊपजै, काँटा ना संताप।
सदा आपमय सत्यमय, सदा ज्योतिमय आप ॥ २८ ॥

उसके फूलों से आनद पैदा नहीं होता और काँटों से कष्ट नहीं होता। वह सदैव आपमय है, सत्यमय है, ज्योतिमय है और वह आप ही है ॥ २८ ॥

आपमय—

मीराँ मिलगी राम में, ज्यूँ अनंत में सान्त।
ज्यूँ ससीम निस्सीम में, यो अभेद एकान्त ॥ २९ ॥

मीराँ राम में मिल गई मानों अनत में सान्त मिला हो या निस्सीम में ससीम मिला हो। यह एकान्त अभेद है ॥ २९ ॥

ज्यूँ पाणी की बूँद मन, धार अनोखो नेम।
सँमदर माँही आ मिली, सोच पाछलो प्रेम ॥ ३० ॥

जिस प्रकार पानी के बूँद अनोखे नियम को धारण करके और पिछले प्रेम को सोच कर समुद्र में आ मिली हो ॥ ३० ॥

वायूमण्डल में ज्यूँ मिली, कोई पवन तरंग।
आयो देख्यो आप में, लियो पुराणो ढंग ॥ ३१ ॥

जैसे कोई पवनतरग वायुमण्डल में समा गई हो और अपने में आपको देख कर पुराना ढंग लिया हो ॥ ३१ ॥

एक पतंगो ज्यूँ मिल्यो, परम ज्योति में आय।
समरस और अभेद को, जाण्यो मरम लुभाय ॥ ३२ ॥

जैसे एक चिनगारी परमज्योति में आ मिली हो और उसने प्रसन्न हो कर समरसता और अभिन्नता का मर्म जान लिया हो ॥ ३२ ॥

बालू को कण एक ज्यूँ, आ धोराँ के देस।
आप समायो आप में, धार पुराणो भेस ॥ ३३ ॥

जैसे बालू का एक कण टीबों के देश में आकर आप अपने में समा गया हो और पुराना वेश धारण कर लिया हो ॥ ३३ ॥

मीराँ तो गोपाल में, मीराँ में गोपाल।
नीर छीर सी एक-रस, महाशून्य की चाल ॥ ३४ ॥

मीरां गोपाल में और मीरां में गोपाल में मिल गए—नीर क्षीर के समान एक रस होकर। यह चाल महाशून्य की है ॥ ३४ ॥

एक तान अर एक रस, एक रंग, एकान्त।
एक प्राण अर एक गुण, एक ज्योति, मन शान्त ॥ ३५ ॥

एक तान, एक रस, एक रंग, एक अन्त, एक प्राण, एक गुण और एक ज्योति। फिर शान्त मन ॥ ३५ ॥

राठोड़ाँ री धीवड़ी, सीसोद्याँ रै गेह।
बाडी बाई प्रेम की, इमरत बरस्यो मेह ॥ ३६ ॥

राठौड़ों की पुत्री शीशोदियों के घर में आई। उसने प्रेम की बाड़ी लगाई तो अमृत का मेह बरसा ॥ ३६ ॥

पवन तरंग—

नभ की पून तरंग रस, माणे मोज अपार।
जित मन आवै जा रमै, ललक उठै ससार ॥ १ ॥

आकाश की एक पवन तरग अपार मोज मे रस मना रही है। जिधर मन करता है, चली जाती है। ससार ललक उठता है ॥ १ ॥

परवत के सिखरां चढी, विचरै ले आनंद।
धरती ओर अकास का, सरसै मोद अमंद ॥ २ ॥

वह आनद में पर्वत के शिखरों पर चढ़ कर घुमती है तो धरती और आकाश का अमद आनद सरस हो उठता है ॥ २ ।

फूलां तणो सुवास ले, बाग बगीचाँ माँय।
सरसावै आनंद मैं, रूँख रूँख हरखाय ॥ ३ ॥

फूलो की सुवास लेकर बाग और बगीचो मे प्रसन्नता से सरस होती है तो हरेक पेड़ आनद मनाता है ॥ ३ ॥

जल की धारा सूँ रमै, सीतल कर अंग अंग।
नान्ही नान्ही बूँद सूँ, प्रेम नेम कै रंग ॥ ४ ॥

जल की धारा के साथ खेलती है तो अङ्ग अङ्ग शीतल हो जाते हैं। छोटी छोटी बूँदों के साथ प्रेम और नेम का रङ्ग जमता है ॥ ४ ॥

आवै जावै झूमती, हरियाली कै राज।
घण जंगल मां मोदमय, बनदेवी कै साज ॥ ५ ॥

हरियाली के राज्य मे झूमती हुई आती जाती है। सघन जगल मे वनदेवी के साज के साथ मोदमय हो जाती है ॥ ५ ॥

जा धोरां कै राज मैं, ले पुन्यूँ की रात।
अगजग नै सोलो करै, तड़काऊ परभात ॥ ६ ॥

टीबों के देश में जाकर पूर्णिमा की रात को साथ लेकर चराचर को प्रातःकाल तक शीतल कर देती है ॥ ६ ॥

मन में उपजी कामना, देखूँ राजसमाज।
मानव कुल के ग्यान को, जग में छायो साज ॥ ७ ॥

उसके मनमें इच्छा हुई कि मैं राज समाज को देखूँ। संसार में मानवकुल का ज्ञान बहुत सजा हुआ कहा जाता है ॥ ७ ॥

सौन्दर्यमयी—

बडो घरानो सूर्यकुल, राणाजी को राज।
धन धरती मेवाड को, रजपूती को सान ॥ ८ ॥

सूर्यकुल बड़ा घराना और राणाजी का राज्य। राजपूत धर्म की शोभा मेवाड़ की धरती धन्य है ॥ ८ ॥

भीमसुता क्रिस्ना भयी, ज्यूँ पुन्यूँ को चाँद।
अगजग नैं उज्वल करै, इमरत रस सूँ सांद ॥ ९ ॥

पूर्णिमा के चंद की तरह भीमसिंह की पुत्री कृष्णा पैदा हुई और अगजग को अमृतमय और उज्ज्वल करने लगी ॥ ९ ॥

फूलाँ तणो सुवास कैं, एक ठौर सरसाय।
आयो धार सरीर जग, तन मन सूँ हरखाय ॥ १० ॥

मानो फूलों का सौरभ इकट्ठा होकर, तन मन से प्रसन्न होकर सशरीर संसार में आ गया हो ॥ १० ॥

सम्मोहन संगीत के, धर मानव को रूप।
आयो भू पर मोदमय, छायो रूप अनूप ॥ ११ ॥

अथवा सम्मोहन संगीत अनुपम रूप के साथ मोदमय होकर मनुष्य शरीर में धरती पर आ गया हो ॥ ११ ॥

सुन्दरता संसार की, रचना को संधान।
एक ठौर विधना धस्यो, क्रिस्ना को तन मान ॥ १२ ॥

विधाता ने कृष्णा के शरीर को सब कुछ समझ कर समस्त संसार के सौन्दर्य और रचना के संधान को एक ठौर पर रख दिया ॥ १२ ॥

तन में यौवन ऊभस्यो, बागाँ मांय वसन्त।
रोम रोम में राग नव, सरस्यो रूप अनंत ॥ १३ ॥

उसके शरीर में बगीचे में बसन्त की तरह यौवन उमड़ा। रोम रोम से नई राग निकलने लगी और अनंत रूप सरस हो उठा ॥ १३ ॥

तन में छायो रूप नव, मन में नई उमंग।
फूलां छाई बेल को, कुण जाणै रस रंग ॥ १४ ॥

शरीर में नया रूप और मन में नई उमग। फूलों से छाई हुई लता के रसरंग को कौन जान सकता है? ॥ १४ ॥

तकरार—

किस्ना तणै विवाह में, भयो गूढ़ तकरार।
दो राजा दो फोज ले, आय चढ़्या बटमार ॥ १५ ॥

कृष्णा के विवाह में गहरा तकरार हुआ और दो राजा दो सेनाएँ लेकर डाकू के समान आ चढे ॥ १५ ॥

अब पिछलो मेवाड़ ना, ना वो तेज खरार।
उडणै पिरथीराज का, दिन भूल्यो संसार ॥ १६ ॥

अब मेवाड़ पहले जैसा नहीं था और न वह खरा तेज ही था। ससार "उड़ने वाले पृथ्वीराज" के दिन भूल गया था ॥ १६ ॥

किस्ना करै विचार मन, दो भूपां की मांग।
कुण जाण्यो ऊं हीव की, तन की मन को राग ॥ १७ ॥

कृष्णा, जो दो राजाओं की मांग है, मन में विचार करती है। उस हृदय, तन और मन की राग को कौन जान सकता है ॥ १७ ॥

मैं देख्यो ना मान नृप, जगत सिंघ ना भूप।
के नारी संसार में, आई ओछै रूप ॥ १८ ॥

न मैंने राजा मानसिंह को देखा और न राजा जगतसिंह को ही देखा। क्या नारी का ससार में इतना छोटा रूप है? ॥ १८ ॥

आई फोज अनंत क्यूँ, संग लिया हथियार।
के नारी संसार में, बोरां को व्यापार ॥ १९ ॥

यह अनत फौज हथियार लेकर क्यों आई? क्या नारी ससार में वीरों का व्यापार है? ॥ १९ ॥

दोय बिधाता के घड़ी, नर नारी की देह।
के बिस का फल नीपज्या, इमरत बरस्यो मेह ॥ २० ॥

अथवा नर और नारी की देह रचने वाले विधाता दो हैं। अथवा अमृत का मेह बरसने पर भी विषफल उत्पन्न होता है ॥ २० ॥

व—

नर को ओर समाज को, के साचो सम्बंध।
पाप पुण्य को भेद के, ना जाण्यो जग अंध ॥ २१ ॥

नर और समाज का सच्चा सम्बन्ध क्या है ? पाप और पुण्य का भेद क्या है ? यह अंधा संसार नहीं जान सका ॥ २१ ॥

क्यासूँ चाली रीत या, कुण थरप्यो यो ब्याह।
क्यूँ दुख को कारण भयो, मन को घणो उछाह ॥ २२ ॥

यह रीति किस से चली ? यह ब्याह किसने स्थापित किया ? मन का परम आनंद दुख का कारण कैसे हुआ ? ॥ २२ ॥

राजा रंक समान दो, दोनूँ नर को रूप।
या माया संताप की, कारण भई करूप ॥ २३ ॥

राजा और रंक दोनों समान हैं और मनुष्य के रूप में हैं। यह गंदी माया संताप का कारण हुई है ॥ २३ ॥

ना जाण्यो संसार यो, मानव हिव को भेद।
दुख सूँ निपज्यो परम सुख, सुख सूँ निपज्यो खेद ॥ २४ ॥

संसार ने मानव हृदय के रहस्य को नहीं जाना। दुःख से परम सुख पैदा हुआ और सुख से खेद पैदा हुआ ॥ २४ ॥

विषपान—

धाड़ी अधम अमीर खाँ, कालदूत आदेस।
के क्रिस्ना द्यो मौत नै, के उजड़ै यो देस ॥ २५ ॥

अधम डाकू अमीर खाँने कालदूत के समान आज्ञा दी—कृष्णा को मार डालो या यह देश उजड़ता है ॥ २५ ॥

अंग अंग ढीला भया, टूट्या नख अर दंत।
अब मेवाड़ी सेर कै, बल को आयो अंत ॥ २६ ॥

अब मेवाड़ी सिंह का बल खतम हो गया था। उसके अङ्ग प्रत्यग ढीले हो गए। नख और दांत टूट गए ॥ २६ ॥

डर सूँ सूक्यो तालवो, नम्यो सरम सूँ गात।
राणा जी दरबार में, करी पुण्य की रात ॥ २७ ॥

डर से कलेजा सूख गया। शर्म से शरीर झुक गया। राणाजी ने भरे दरबार पुण्य की रात कर दी ॥ २७ ॥

दौलतसी आदेस पा, गरज्यो सत कै नाम।
कन्या कै हथियार गल, महानीच को काम ॥ २८ ॥

दौलतसिंह आज्ञा पाकर सत्य के नाम पर गरज उठा—कन्या के गले पर हथियार रखना महानीच का काम है ॥ २८ ॥

काल कटारी हाथ ले, चाल्यो दास जवान।
कन्या कै सत रूप सूँ, भयो काठ तज ग्यान ॥ २९ ॥

जवानदास कालकटारी हाथ में लेकर चला, परन्तु कन्या के सत्य और रूप से ज्ञानहीन होकर काठके समान हो गया ॥ २९ ॥

विस प्यायो पण आ पड्यो, यो ना मेरो काम।
तीन वेर उलटो फिर्यो, सत को राख्यो नाम ॥ ३० ॥

कृष्णा को विष पिलाया गया पर वह कै होकर आ गया—यह काम मेरा नहीं है। उसने तीन बार फिर कर सत्य का नाम रक्खा ॥ ३० ॥

अंत समय अम्मल भयो, क्रिना को जमदूत।
रजपूतां की जात कै, सिर पर छायो भूत ॥ ३१ ॥

अन्त में अफीम कृष्णा के लिए यमदूत हुआ, जो राजपूत जाति के सिर पर भूत के समान बैठा है ॥ ३१ ॥

हँस कर प्यालो पी गई, राखी सत की आन।
रजपूती नै साथ ले, डूब्यो राजसथान ॥ ३२ ॥

कृष्णा हँस कर प्याला पी गई और सत्य की आन को रख लिया। राजपूती को साथ ले कर राजस्थान डूब गया ॥ ३२ ॥

वेदना—

मायड़ जाणी वेदना, कन्या में जो आप।
धरती को फाट्यो हियो, सीता कै संताप ॥ ३३ ॥

माता ने वेदना को समझा, जो कन्या में स्वय है। सीता के दुःख से धरती का हृदय फट गया था ॥ ३३ ॥

चुन चुन माला में धर्या, मुरझाया वै फूल।
रंग बिरंगे रूँख की, गई जमीं सूँ मूल ॥ ३४ ॥

चुन चुन कर माला में फूल रक्खे थे, वे मुरझा गए। कई रंगोंवाले पेड़ की जड़ ही धरती पर से चली गई ॥ ३४ ॥

क्रिस्ना नैं खो धनपती, कर्‌यो सुरंगी राज।
एक गयाँ कद ऊवरयो, जगती मांय समाज ॥ ३५ ॥

कृष्णा को खोकर धनिकने राज्य को सुरंगा बनाया, पर एक के जाने से समाज कैसे बच सकता है ॥ ३५ ॥

एक नार कै कारणै, कर्‌यो प्राण को होम।
ऊँ दिन ईं मेवाड पर, इमरत वरस्यो सोम ॥ ३६ ॥

एक स्त्री के कारण प्राणों को होम दिया था उस दिन इस मेवाड़ पर चंद्रमा ने अमृत बरसाया ॥ ३६ ॥

घर को गठबंधन तुड्‌यो, जुड्‌यो मोत सूँ जाय।
आँधी आई वाग मँ, माग्या रूँख उठाय ॥ ३७ ॥

घर का गँठबंधन टूट गया और वह मौत से जुड़ गया। बाग में आँधी आई कि तमाम पेड़ उखड़ गए ॥ ३७ ॥

क्रिस्ना राख्यो प्राण दे, अखै बाप को राज।
पण राणा जी क्यूँ लियो, सदा अलूणो साज ॥ ३८ ॥

कृष्णा ने प्राण देकर पिता का राज्य अक्षय किया परन्तु राणाजी ने फीका साज क्यों रक्खा? ॥ ३८ ॥

रजपूती को नाम जस, जीवन आज निकाम।
जीं मारग क्रिसना गई, ऊँ गैलै सूँ काम ॥ ३९ ॥

राजपूती का नाम, यश, जीवन आज व्यर्थ है। जिस मार्ग पर कृष्णा गई वही रास्ता सच्चा है ॥ ३९ ॥

क्रिस्ना जाणी छत्री गुण, भयी जमीं सूँ लोप।
क्रिस्ना की जननी गई, भयो काल को कोप ॥ ४० ॥

कृष्णा ने राजपूत-गुण जाना और वह धरती से लुप्त हो गई। फिर कृष्णा की माता भी चली गई और काल का कोप हुआ ॥ ४० ॥

म्हारो देश

वागाँ माँली कोयली, गाई पंचम राग।
नवरंगी रूत आ रमी, धन धरती का भाग ॥ १ ॥

बागों में कोयल ने पचम राग छेड़ी। नवरगी मौसम आ गई है। धरती के भाग्य धन्य है ॥ १ ॥

साँवण गरजी बादली, बोल्या बन का मोर।
अम्मर सूँ मोती झड़्या, ही में उठी हिलोर ॥ २ ॥

सावण का बादल गरजा। वन में मोर बोलने लगे। आकाश से मोती झरने लगे और हृदय में एक हिलोर उठी ॥ २ ॥

डफ बाज्या नाच्यो हियो, ऊँची चढ़ी धमाल।
मन मस्तानो हो रयो, या फागण की चाल ॥ ३ ॥

डफ बजते ही हृदय नाचने लगा और धमाल गीत का स्वर ऊँचा चढ़ गया। मन मस्ताना हो गया। यह फागन की बहार है ॥ ३ ॥

गींदड़ को डंको चढ्यो, मन में चढगी मोज।
मारू बाजो ज्यूँ सुण्या, रणरसियाँ कै ओज ॥ ४ ॥

गींदड़ खेल का डका ऊँचा चढ़ा कि मन में मोज चढ़ गई, जैसे युद्ध का बाजा सुनने से रणरसिकों के ओज चढ़ जाता है ॥ ४ ॥

ऊँचा ऊँचा टीबडा, चम चम करै हमेस।
आँख्या माही आ बस्यो, घणो पियारो देस ॥ ५ ॥

ऊँचे ऊँचे टीबड़े जहा सदैव चमचम करते रहते हैं वह प्यारा देश आँखों में आकर बस गया है ॥ ५ ॥

पणिहार्‍याँ रो नाचणो, माळीडाँ रा गीत।
तन मैं मन मैं आ रम्यो, साँवण रो संगीत ॥ ६ ॥

पणिहारिनों का नाच, माली लोगों के गीत और वह सावण का सगीत तन में मन में आकर रम गया है ॥ ६ ॥

ईंडूड़ी दोगड़ धरी, मुख मैं मधरा बोल।
पणिहारी छम छम चली, मद को नाप न तोल ॥ ७ ॥

ईंडी पर दोगड़ रखकर मधुर गीत गाती हुई पणिहारी छम छम करती हुई चली। उसके मद का क्या ठिकाना ? ॥ ७ ॥

कच्चै जोहड़ दोड़, डुकक मींगणो खेलता।
ऊँ दिनड़ाँ रो होड, सोनै का दिन ना करै ॥ ८ ॥

कच्चे जोहड़ जाकर "डुकरू मींगणों" खेल खेला करते थे, उन दिनों की बराबरी सोने के दिन भी नहीं कर सकते ॥ ८ ॥

जीभ लटी छाला पड़्या, गयो तिवाँळो आय।
ऊपर सूं आगी पड़ै, ईं टीबाँ कै माँय ॥ ६ ॥

जीभ सूख गई, छाले पड़ गये और चक्कर आ गया। इन टीबों में ऊपर से आग बरसती है ॥ ९ ॥

टन टन करतो टाट, आगै चाली बीड़ नै।
अलगोजो ले हाथ, रोही रो राजा चल्यो ॥ १० ॥

टन् टन् करती हुई बकरियाँ आगे आगे जंगल की तरफ चली। पीछे हाथ में अलगोझा लेकर जंगल का राजा चला ॥ १० ॥

अम्मर भबकी बीजळी, बादळ गरज्या जोर।
छतरी छाई रंग रँग्या, नाच्या वन का मोर ॥ ११ ॥

आकाश में बिजली चमकी और बादल जोर से गरजे। इधर मस्त होकर बन के मोर छतरी बनाकर नाचने लगे ॥ ११ ॥

नाच नाच हरखावती, मुख मैं मधरा बैण।
फूलाँ छाई बेल या, ताराँ छाई रैन ॥ १२ ॥

मधुर गीत गाती हुई, नाच नाच कर प्रसन्न हो रही है, यह फूलों से आवृत्त बेल तारों भरी रात के समान है ॥ १२ ॥

मानसरोवर गावती, करती मोज विहार।
मोती चुगती मोद मैं, बा हंसाँ की डार ॥ १३ ॥

मानसरोवर में गाती हुई आनद विहार करती है, और मोद में मोती चुगती है। धन्य हंसों की पंक्ति। ॥ १३ ॥

हिवड़े री वार्ता

ऊंची चड़गी तावड़ी, रोटी लेगा काग
रेवड़ में स्याली वड़्यो, मूढ रुखाला जाग ॥ १ ॥

धूप ऊंची चढ़ आई है। काग रोटी ले गए हैं। बकरियों में भेड़िया आ गया है। मूर्ख रखवाली करनेवाले जाग। ॥ १ ॥

इन्नै रवै धाड़वी, इन्नै रवै चोर।
सिर सुवरण को भार ले, जासी कुणसी ओर ॥ २ ॥

इधर डाकू रहते हैं और इधर चोर रहते हैं। तू सिर पर सोने का बोझा लेकर किधर किधर जाएगा ? ॥ २ ॥

एक रात को राज, तोरूँ फूलां को भलो।
रोईड़ै को साज, यूँ आयो यूँ ही गयो ॥ ३ ॥

तोरूँ के फूलों का एक रात का राज्य ही अच्छा। रोहीड़े के निर्गंध फूल यों ही सजे और यों ही गए ॥ ३ ॥

पाणी सागै वह चल्यो, लू सँग उड़्यो अकास।
वालू कै कण सो भ्रम्यो, नर माया की फाँस ॥ ४ ॥

पानी के साथ बह चला और लू के साथ आकाश में उड़ गया। मनुष्य माया की फांस में बालू के कण के समान भटकता रहा ॥ ४ ॥

स्यान सिकल कै मांय, नहीं परेखो मांयलो।
घणा जिनावर खाय, सूदी दीखै छिपकली ॥ ५ ॥

ऊपरी सूरत शकल में भीतरी परख नहीं हो सकती। छिपकली सरल दीखती है पर कीड़े बहुत खाती है ॥ ५ ॥

रावण सिरसा चल दिया छोड़ जमी पर लंक।
काल बली कै स्यामनै, के राजा के रंक ॥ ६ ॥

काल के सामने क्या राजा और क्या गरीब। रावण सरीखे बली भी लंका यहीं छोड़ कर चले गए ॥ ६ ॥

फूल झड़ै मोती झड़ै, सतपुरसां का बैण।
इमरत की बूँदां झड़ै, डब डब भरिया नैण ॥ ७ ॥

सत्पुरुषों की बोली से फूल और मोती झड़ते हैं परन्तु भरी हुई आंखों से अमृत का बूँदें झड़ती हैं ॥ ७ ॥

सत को मारग छोडियो, ज्यूँ खांडै की धार।
ऊजड़ ऊजड़ डोलतां, गया जमारो हार ॥ ८ ॥

तलवार की धार समझ कर सत्य का मार्ग छोड़ दिया और इधर उधर भटकते हुए जीवन खो दिया ॥ ८ ॥

कित सँमदर कित बादली, कित सरवर कित नीर।
बूँद समाई बूँद में, जल को जल सूँ सीर ॥ ९ ॥

कहां समुद्र और कहां बादल। कहां सरोवर और कहां पानी। एक बूँद दूसरी बूँद में समाई है तथा पानी का पानी से पूरा साझा है ॥ ९ ॥

देख नया दिन सामनै, आयो एक उफान।
पाछै झड़गा रूप का, एक एक कर पान ॥ १० ॥

नए दिन देखकर एक उफान सा आया, फिर सौन्दर्य के पत्ते एक एक करके झड़ गए ॥ १० ॥

सायर साची कथ गय, जिन्दगानी को सार।
परवत चढ़णो तावडै, लेकर सिर पर भार ॥ ११ ॥

कवि लोग सच कह गए हैं—जिन्दगी का सार यही है कि सिर पर बोझा लेकर धूप में पहाड़ पर चढ़ना होगा ॥ ११ ॥

कानूड़ै की बासरी, बाज रही दिन रैन।
मेरै हिव कै देस मं, रोकी कदे रुके न ॥ १२ ॥

कृष्ण की वंशी रात दिन मेरे हृदय प्रदेश में बज रही है। वह कभी रुक नहीं सकती ॥ १२ ॥

उल्लास

नाना साहब थे कठे, के माली की भूल।
सारा झड़गा बाग का, एक एक कर फूल ॥ १ ॥

नाना साहब तुम कहाँ हो ? माली से क्या भूल हुई कि बाग के समस्त फूल एक एक करके झड़ गए ॥ १ ॥

सैं देई बो सेर सो, करतो घणो विचार।
टीपू सागै टूटगी, भारत की तरवार ॥ २ ॥

वह सशरीर सिंह के समान था। गम्भीरता पूर्वक विचार करता था। टीपू के साथ ही भारत की तलवार टूट गई ॥ २ ॥

ओ रणबंका सिंधिया; दिल्लीपत की आन।
एकरस्यां तो आव तूँ, पाछो हिन्दुस्तान ॥ ३ ॥

ओ रणबंका सिंधिया (माधोजी) तूँ दिल्ली सम्राट की इज्जत है। एक बार तो वापिस भारतवर्ष में आ ॥ ३ ॥

स्वारथ कै संसार मैं, सत नै आई ऐल।
दारा सागै ढह पड़्यो, मुगलाई को म्हैल ॥ ४ ॥

स्वार्थ के संसार में सत्य पर चोट पड़ी। दारा के साथ ही मुगल सल्तनत का महल गिर गया ॥ ४ ॥

पाणीपत कै खेत मैं, खोया लाल अनेक।
पण बिस्वास न पावसी, वीर मराठो एक ॥ ५ ॥

पानीपत के मैदान में अनेक लाल नष्ट हुए। परन्तु विश्वासराव जैसा वीर मराठा कहाँ मिलेगा ? ॥ ५ ॥

मन की मन मैं मारसी, पड़्यो पींजरै सेर।
नित पंजाबी मोज की, आसी घणी हुँसेर ॥ ६ ॥

दिलीपसिंह पिंजरे में पड़ा मन ही मन पछताता रहेगा, उसे पंजाब के आनन्द सदैव बहुत याद आवेंगे ॥ ६ ॥

कोमल जाणूँ फूल सी, करड़ो ज्यूँ बजराक।
ललना-कुल की तूँ बणी, लक्ष्मीबाई नाक॥ ७॥

लक्ष्मीबाई ललना कुल में शिरोमणितुल्य हुई। वह फूल के समान कोमल थी और वज्र के समान कठोर॥ ७॥

वीर सिवा मरहट्ट रो, जाग बिताई रात।
पाप कटै, कीरत फलै, नाम लियाँ परभात॥ ८॥

महाराष्ट्र के वीर शिवाजी ने जाग कर सारी रात व्यतीत की। प्रभात काल में उसका नाम लेने से पाप मिटता है और कीर्ति मिलती है॥ ८॥

आरजकुल को वीर रस, आयो भू पर आप।
वो मन. सैं क्यूँ बीसरै, जींको नाम प्रताप॥ ९॥

आर्यकुल का वीररस स्वयं धरती पर आ गया। वह मन से कैसे भुलाया जाए जिसका नाम ही प्रताप है॥ ९॥

अणगिणती परताप अब, रजपूतां के मांय।
नाम धाम में के पड़्यो, वो पुरुषारथ नांय॥ १०॥

अब भी राजपूतों में अगणित प्रतापसिंह हैं, परन्तु नामधाम में क्या रक्खा है। वह पुरुषार्थ कहां? ॥ १०॥

बिजली आई गांव में, हरख्या मन में भोत।
यो पच्छिम को च्यानणो, लेगो सारी जोत॥ ११॥

गांव में बिजली आई तो लोग बड़े प्रसन्न हुए। वह पश्चिम का प्रकाश सारी ज्योति ले गया॥ ११॥

पीव गया वेगार, घर में दाणो एक ना।
ईं दूखड़ै की धार, म्हारी आंख्यां ना थमै॥ १२॥

प्रियतम बेगार में गए और घरमें अन्न का एक दाना भी नहीं। इस दुख की धारा हमारी आंखों से नहीं रुकती॥ १२॥

नर को नर चाकर भयो, कुण बिरची या बात।
मन की मन में मारतां, दिन की होगी रात॥ १३॥

एक मनुष्य दूसरे का गुलाम हुआ, यह रीति किसने चलाई? मन की मन में मारते मारते दिन से रात हो गई॥ १३॥

अंदाता घर अन्न ना, टाबर कडपै हाय ।
मालिक कै दरबार सू, पडी बीजली आय ॥ १४ ॥

अन्नदेनेवालों के घर में अन्न नहीं है और बच्चे तड़फ रहे हैं । मालिक के दरबार से वज्र आकर गिर पड़ा ॥ १४ ॥

जोग नहीं, भगती नहीं, नहीं ग्यान तप सार ।
ऊजड ऊजड डोलता, गयो जमारो हार ॥ १५ ॥

न योग है, न भक्ति है । न ज्ञान या तप ही है । मार्गहीन भटकते भटकते ही जीवन बीत गया ॥ १५ ॥

खाया जूठ्या बेर, जा भिलणी की झूपड़ी ।
अब क्यू लागी देर, मेरी बरिया आवतां ॥ १६ ॥

तुमने भिलणी की झोंपड़ी में जाकर जूठे बेर खाए हैं, अब मेरी बार आते देर क्यों लगी ? ॥ १६ ॥

रहस्य

टीबै परली झाड़खी, झूल मिलोरा खाय।
जग मे आवण को मरम, बीसूँ पूछो जाय॥ १॥

टीबे पर झाड़ी पवन के साथ झूल रही है, ससार में आने का मर्म उसे जा कोई पूछे॥ १॥

तारो टूटत बोलियो, पुन्यूँ जगमग रात।
कदे न आसी गावती, हँसती करती बात॥ २॥

टूटते हुए तारे ने कहा — इस ससार में हँसकर बातें करती हुई, गाती हुई पूर्णि की जगमगाहट कभी नहीं आएगी॥ २॥

हाली बोल्यो खेत सूँ, तेरा बड़ा सुवाद।
इमरत रस सूँ सरवरी, मिली कठा सूँ स्वाद॥ ३॥

हल चलानेवाले ने खेत से कहा—तेरे स्वाद बहुत हैं, तुझे यह अमृतमयी स्वाद कहाँ से मिली? ॥ ३॥

सर सूक्यो पछी उड्यो, भयो गगन में सोर।
ओ धरती का राग सुण, भाव न्याव के जोर॥ ४॥

तालाब के सूखने पर पक्षी उठ गया और आकाश में शोर मचा, ओ धरती के राजा, भाव और न्याय पर किसी का जोर नहीं॥ ४॥

उगतो सूरज झळमयो, ढळतो छोडी सांस।
फेर उग्यो फेरूँ ढल्यो, फेरूँ आस निरास॥ ५॥

उगता हुआ सूरज चमक उठा और छिपते समय उसने सांस छोड़ी। वह फिर उगा और फिर छिपा। फिर वही आशा और निराशा॥ ५॥

दीओ बुजतो बोलियो, छोड सुरंगी आस।
कदे न आसी हाँसतो, ईं जग में परकास॥ ६॥

दीपक ने बुझते समय सुरंगी आशा को त्याग कर कहा—इस ससार में हँसता हुआ प्रकाश कभी नहीं आएगा॥ ६॥

डूँगर आई वेलडी, मद भर पसरी जाय।
घास चरंती बाछड़ी, पान फूल फल खाय ॥ ७ ॥

अपने मद में पहाड़ पर लता फैली जा रही है। उसके पत्ते, फूल और फल घास चरने वाली बछिया खा रही है ॥ ७ ॥

बूँदा बोली आज तो, गाल्यो फिरमिर गीत।
नाँ जाणाँ कित ले धरै, जग की उलटी रीत ॥ ८ ॥

बूँदों ने कहा—आज तो झिरमिर गीत गा लो। न जाने संसार की उलटी रीति कहाँ ले जा पटके ॥ ८ ॥

कागद हो तो बाँच ल्याँ, बाँच रहाँ पतियाय।
तारों छाई रैन को, मरम न जाण्यो जाय ॥ ९ ॥

यदि पत्र हो तो पढ़ लें और पढ़ कर विश्वास कर लें। इस तारोंभरी रात का रहस्य मालूम नहीं हो सकता ॥ ९ ॥

सोट घुमा ऊँचो कर्‌यो, बोल्यो जोर अवाज।
यो सूँप्यो गुवाल नै, ईं रेवड को राज ॥ १० ॥

लट्ठ को घुमाकर ऊँचा कर के वह बोल उठा—ग्वाले को गल्ले का राज्य इसने सौंपा है ॥ १० ॥

आज सुरंगो दिन उग्यो, किरणाँ चाली गाय।
पाणो हो सो पायल्यो, सतजुग बील्यो जाय ॥ ११ ॥

किरणें गाती हुई चलीं—आज सुरगा दिन उगा है। जो कुछ पाना हो पा लो, सत्ययुग बीता जा रहा है ॥ ११ ॥

नंदी बोली बावला, दूधाँ वरणो नीर।
क्यूं तीसो मरतो फिरै, जुग जुग नहीं सरीर ॥ १२ ॥

नदी ने कहा—पपीहे, यह पानी दूध के समान है। तू क्यों प्यास मरता है? यह शरीर बहुत समय टिकने वाला नहीं है ॥ १२ ॥

कोयलडी की कूक में, ऊँडी एक पिछाण।
जानणहाला जाणसी, के जाणै अणजाण ॥ १३ ॥

कोयल की कूक में एक गहरा रहस्य है उसे जानने वाले ही जानेंगे। अनजान क्या जानेंगे? ॥ १३ ॥

पणिहार्‌यां रा झूलरा, ढोलां हो गया खेह।
ईं बैरे के नीर को, कदे न आयो छेह ॥ १४ ॥

पणिहारिनों के समूह पानी ढोते ढोते मिट्टी हो गए, पर इस कूए का पानी कभी खतम नहीं हुआ ॥ १४ ॥

सींग खुला माता गऊ, गई बोड में आय।
अब क्यूँ पाछी बावली, सींग बँधावण जाय ॥ १५ ॥

गोमाता, सींग खुला कर तूँ जगल में आ गई है, अब फिर सींग बँधाने क्यों वहीं जा रही है ॥ १५ ॥

रैन बिताई जागतां, दिवस बितायो सोय।
मोती मोती चुग लिया, कांकर दिया डबोय ॥ १६ ॥

रात जाग कर व्यतीत की और दिन सोकर बिताया। मोती चुन लिए और कंकर डाल दिए ॥ १६ ॥

एक जोत सूँ दीप ये, सारा लिया उजास।
जांको जेतो नेह रस, बासूँ तेतो आस ॥ १७ ॥

इन सब दीपकों ने एक ही ज्योति से प्रकाश लिया है। जिसका जितना स्नेह-रस होगा उसमें उतनी ही आशा होगी ॥ १७ ॥

कोयल चाली गावती, कागा चाल्या रोय।
टीबां मैं भंभूलियो, गेरी रेत बिलोय ॥ १८ ॥

कोयल गाती हुई चली और काग रोते हुए चले। टीबों में अंधड़ ने हवा का मथन कर डाला ॥ १८ ॥
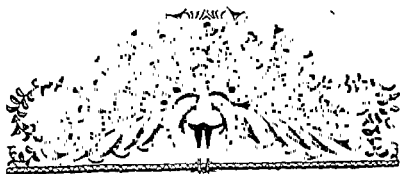
फीक

सूरत जींकी मोवनी, मीठा जींका बोल।
बनडो फूल गुलाब को, म्हारै मन को मोल ॥ १ ॥

जिसकी सूरत मुग्ध करने वाली है, जिसकी बोली मधुर है, वह गुलाब के समान बनड़ा मेरे मन का मोल है ॥ १ ॥

ओल्यूँ सखियाँ टेर दी, दुविदा लागी आय।
इन्नै प्यारा आप तो, इन्नै प्यारी माय ॥ २ ॥

सखियों ने ओल्यूँ गीत प्रारम्भ कर दिया तो बड़ी दुविधा लगी। इधर प्यारा प्रियतम ता उधर प्यारी माता ॥ २ ॥

देख दिवाळी जोत, गोरी मन में यूँ कह्यो।
यो दिन फीको भोत, पीव बसै परदेस में ॥ ३ ॥

दीपमालिका का प्रकाश देख कर सुन्दरी ने मन में कहा—प्रियतम परदेश है, यह दिन बड़ा फीका है ॥ ३ ॥

पीव गया तो वै गया, पूग्या परलै पार।
क्यां सूँ अब पाती लिखूं, न्याव पडो मझधार ॥ ४ ॥

प्रियतम गए तो ऐसे गए कि उस पार पहुँच गए। अब पत्र किसे लिखूँ? नाव मझधार में पड़ी है ॥ ४ ॥

सांवणियाँ रा लोर, सखियाँ गावै मोद में।
हींडो रेसम डोर, कद मे देखूँ मावडी ॥ ५ ॥

सावन के लोर चलते हों, सखियां मोद गीत गाती हों और रेशमी डोर का झूला हो, माँ, इनको मैं कब देखूँगी? ॥ ५ ॥

रूप रग को सोवणो, थारो फूल गुलाब।
म्हारै मन कै फूल नै, देख्याँ फीकी आब ॥ ६ ॥

तुम्हारा गुलाब रूप और रग में सुन्दर है, पर मेरे मन के फूल को देख कर उसकी आब फीकी पड़ जाती है ॥ ६ ॥

पीव मिल्या आँसू झड़्या कोयल गाया गीत।

ईं गीतों की तान की, कुण जाणै रसरीत ॥ ७ ॥

प्रियतम मिले तो आँसू झड़ने लगे और कोयल ने गीत गाना प्रारम्भ किया। इन गीतों की रसरीति कौन जान सकता है ॥ ७ ॥

पीव जी को पातो मिली, छाती लई लगाय।

नैणां सूँ मोती झड़्या, होठां लाली छाय ॥ ८ ॥

प्रियतम की पत्रिका मिली, उसे छाती से लगा लिया। आँखों से मोती झड़ने लगे और होठों पर लाली छा गई ॥ ८ ॥

सांवण आयो हे सखी, पीव गया परदेश।

पी आयो सांवण गयो, भयो अलूणो भेस ॥ ९ ॥

हे सखी, सांवण आया तो प्रियतम परदेश चले गए और प्रियतम आए तो सांवण चला गया। यह वेश फीका ही रहा ॥ ९ ॥

साजन सूंप्यो हे सखी, यो मोती अनमोल।

जोत सवाई रैन दिन, गुण की नाप न तोल ॥ १० ॥

हे सखी, यह अनमोल मोती प्रियतम ने मुझे दिया है। रात दिन इसकी आब बढ़ती है और गुणों का नापतोल नहीं है ॥ १० ॥

रूप नहीं, रंगत नहीं, गंध न मुखड़े आब।

ज्यांनै भूँरो भूलियो, सो मैं फूल गुलाब ॥ ११ ॥

न रूप है, न रंगत है, न गन्ध है न मुख पर आब है। जिसको भौंरा भूल गया, मैं वह गुलाब का फूल हूँ ॥ ११ ॥

गंगा

जीवनदाता रसमयी, गंगा गीता गाय।
आरजकुल के लाल की, तीनूँ साँची माँय ॥ १ ॥

गंगा, गीता और गाय तीनों जीवन देने वाली है और रसमयी है। ये भारतीय आर्यकुमार की सच्ची माता हैं ॥ १ ॥

गोरवगिर की गोद सूँ, आई आरज देस।
रतनाकर सूँ जा मिली, सब को निरमळ भेस ॥ २ ॥

तूँ गौरव गिरि की गोद से आर्य देश में आई और रत्नाकर से जाकर मिल गई। तुम्हारा वेश सत्त्वमय रहा ॥ २ ॥

परकिरती को नेम अर, भारत माँ को प्यार।
दोनूँ राखै हेत सूँ, रुक रुक चालै धार ॥ ३ ॥

प्रकृति की नियम और भारत माता का प्यार दोनों प्रेम से निभाती हुई तेरी धारा रुक रुक कर चलती है ॥ ३ ॥

सुरगापत की जोत तूँ, दूर कस्या संताप।
नील चुअंता खेत ये, थारो पुन-परताप ॥ ४ ॥

तूँ स्वर्गीय ज्योति है। तूँने समस्त संताप मिटा दिए। ये नीलवर्ण खेत तेरे ही पुण्य-प्रताप हैं ॥ ४ ॥

माटी थासूँ आ मिलै, पाप कटै सब कोय।
जीवन थासूँ आ मिले, मन अम्मर फळ होय ॥ ५ ॥

मिट्टी के तुममें आकर मिलते ही समस्त पाप कट जाते हैं और जीवन के तुममें आकर मिलने से मन अमरफल तुल्य हो जाता है ॥ ५ ॥

कोट कोट तपलोक तूँ, तूँ निरवाण दुवार।
मन की साची कामना, तेरी इमरत धार ॥ ६ ॥

तूँ कोटि कोटि तपलोक है, तूँ ही निर्वाण का द्वार है। तेरी अमृतधारा मन की सच्ची कामना है ॥ ६ ॥

नित निरमल नित पावनी, तेरी इमरतधार।
सुरगापत के मोद को, ईं धरती पर सार॥ ७॥

तेरी अमृत धारा सदैव ही निर्मल है, सदैव ही पावन है। तूँ इस धरती पर स्वर्ग के आनद का सार है॥ ७॥

गंगा गोरव गान कर, इमरत रस ज्यूँ दान।
तन मन सूँ निरमल भया, किता देव समान॥ ८॥

गगा के गौरव का गान किया मानों अमृत रस पी लिया। इस तरह न जाने कितने कवि तन मन से निर्मल होकर देवतुल्य हो गए॥ ८॥

सूरजकुल को तेज वो, चन्दरवंसी जोत।
ल्यायो ईं संसार में, तेरो निरमल स्रोत॥ ९॥

तेरा निर्मल स्रोत ही इस ससार मे सूर्यकुल का वह तेज और चन्द्रवश की वह ज्योति लाया॥ ९॥

आदकाल की साकछी, साचो कहदे मांय।
दुनियाँ को सनमान क्यूं, गोरव गयो बिलाय॥ १०॥

माता, तू आदि काल की साक्षी है, सच बता वह ससार का सम्मान और गौरव क्यों लुप्त हो गया? ॥ १०॥

कहजे सारो भेद तूँ, हर क्यूं भया नचीत।
सोवै खीर समंद में, जुग जुग भया बदीत॥ ११॥

तू सारा भेद कह देना। प्रभु निश्चिन्त कैसे हो गये। कई युग बीत गए, वे क्षीर समुद्र में ही सो रहे हैं॥ ११॥

कीर्तिस्थम्भ

मेवाड़ी धर को धणी, सूरज कुल की जोत।
हिन्दुवाणो सुरताण वो, कुंभज भयो उदोत ॥ १ ॥

मेवाड़धरा के स्वामी, सूर्यकुल की ज्योति, हिन्दुओं के सम्राट महाराणा कुंभा जी प्रगट हुए ॥ १ ॥

आरजकुल पर टूटियो, दे कांधो आकास।
आवै याद क भूलगा, राख्यो सिव को दास ॥ २ ॥

जब आर्यकुल पर आकाश टूटा था तब अपना कंधा देकर शिव के दास ने उसकी रक्षा की थी। वह याद है या नहीं ॥ २ ॥

ग्यान सूरता ध्यान को, संगम थल मतिमान।
गंगा जमना सुरसती, आय मिली छविमान ॥ ३ ॥

ज्ञान, वीरता और ध्यान का वह मतिमान संगमस्थल था, मानों गंगा, यमुना और सरस्वती मिलकर शोभा पाती हों ॥ ३ ॥

मानसरोवर ग्यान को, सूरापण को सूर।
बल को सागर दूसरो, भयो कलानिधि पूर ॥ ४ ॥

वह ज्ञान का मानसरोवर था। वीरता का सूर्य था। बल का समुद्र था। कलाओं का पूर्ण चन्द्रमा था ॥ ४ ॥

वीणा वादक वो भयो, ज्यूँ उदयन सम्राट।
सार रूप संगीत को, पायो कंचन वाट ॥ ५ ॥

वह सम्राट उदयन के समान वीणावादक था। उसने स्वर्णिम मार्ग से संगीत के सार को प्राप्त किया ॥ ५ ॥

अणगिणती राजा भया, थाप्या थाम अनेक।
पण थापत्य विवेक में, कुंभज थो बस एक ॥ ६ ॥

अगणित राजा हो चुके हैं जिन्होंने अनेक स्थम्भ स्थापित किए हैं परन्तु स्थापत्य कला में कुंभाजी एक ही थे ॥ ६ ॥

साखा उपसाखा घणी, पान पान को ग्यान।
सार लियो साहित्य को, अंग अंग नै छाण ॥ ७ ॥

साहित्य की शाखा, उपशाखा यहां तक पत्ते पत्ते का सांगोपांग ज्ञान उन्होंने पाया था ॥ ७ ॥

रणखेतां में भीम सो, विक्रम सो दरबार।
देवालय में संत सो, जस को रूप अपार ॥ ८ ॥

वह रणक्षेत्र में भीम तुल्य थे। दरबार में विक्रम के सामन थे। देवालय में संत जसे थे। उनका यश अपार है ॥ ८ ॥

दिल्ली अर गुजरात में, छायो ओज अपार।
मांडू अर नागोर को, कांप उठ्यो संसार ॥ ९ ॥

दिल्ली और गुजरात में उनका अपार ओज छाया। उनसे मांडू और नागोर का ससार कांप उठा ॥ ९ ॥

बल बाढ्यो, बाढ्यो सुजस, बाढ्यो तेज अपार।
आबू के सिखरां चढी, राणाजी की धार ॥ १० ॥

उनका बल बढा, यश बढा, अपार तेज बढ़ा। राणाजी की सेना आबू के शिखर पर जा चढ़ी ॥ १० ॥

छाण्या जंगल प्हाड़ सै, ले कर में समसीर।
बदलो म्होड़्यो बाप को, मार्‌या चाचक मेर ॥ ११ ॥

हाथ में तलवार लेकर समस्त जगल और पहाड़ छान डाले। चाचक और मेर को मारकर उन्होंने अपने पिता का बदला लिया ॥ ११ ॥

राठोड़ी जंजाल सूँ, राखी धर मेवाड़।
मंडोवर गढ ऊपरां, जस की रेखा पाड़ ॥ १२ ॥

उन्होंने राठोड़ों के चक्र से मेवाड़ धरा की रक्षा की और मडोवर गढ़के ऊपर यश की रेखा बना डाली ॥ १२ ॥

यै हाडा बूँदी धणी, नमिया ले सनमान।
समदर में ज्यूँ आ मिली, जलधारा छविमान ॥ १३ ॥

बूंदीके स्वामी हाडा वीर सम्मान के साथ झुक गए। मानों छविमय जलधारा समुद्र में आ मिली हो ॥ १३ ॥

राज करै वो मालवै, खिलजीकुल की जोत।
मांडू गढ के ऊपरां, तप को भयो उदोत ॥ १४ ॥

वह खिलजी कुल का प्रकाश, पूरे तेज के साथ माडूगढ़ में मालवेका राज्य करता था ॥ १४ ॥

दिल्ली धड़की तेज सूँ, कॉप्या सै सिरदार।
अलादीन सुलतान को, ज्यूँ दूसर ओतार ॥ १५ ॥

उसके तेज से दिल्ली धड़कने लगी। सभी सरदार काँप उठे। वह मानों सुल्तान अलाऊद्दीन का दूसरा अवतार हो ॥ १५ ॥

गुण को गाहक एक वो, पूरो गुण को खाण।
चुण्डाजी रणचण्ड को, साचो करो पिछाण ॥ १६ ॥

वह गुण का ग्राहक एक ही था। गुणों की खान भी था। उसने रणचण्ड चुण्डा जी की अच्छी पहिचान की ॥ १६ ॥

सूर ओर सामन्त ले, बैठ्यो जोड़ समाज।
एक दिवस की वारता, भयो राज को काज ॥ १७ ॥

एक दिन शूर और सामन्तों के साथ दरबार में पूरे साज से वह राजनीति की चर्चा कर रहा था ॥ १७ ॥

उमरा अर उमराव सै, बल के मद में भूल।
ज्यूँ मदमान गयंद मन, आछो माची भूल ॥ १८ ॥

समस्त उमरा और उमराव बल के मद में मस्त थे मानों मतवाले हाथी झूम रहे हों ॥ १८ ॥

दूत एक मेवाड़ को, पतरो सूँपी आय।
आखर ज्यांका तेज सूँ, मुख बोलण हरखाय ॥ १९ ॥

उस समय मेवाड़ के एक दूत ने आकर पत्र सौंपा, जिसके अक्षर मानों तेज से मुख खोल कर बोलने के लिए लालायित हो ॥ १९ ॥

मांडू के दरबार में, एक वीर महपाल।
डर कर छिपियो मोत सूँ, सो सूँपो ततकाल ॥ २० ॥

मांडूके दरबार मे वीर महिपाल नामक व्यक्ति मृत्युसे डरकर आ छिपा है, उसे फौरन सौंप दें ॥ २० ॥

अपराधी मेवाड़ को, धरती पर महपाल।
ना छोडाँ पाताल मे, सूँपो ग्यान संभाल ॥ २१ ॥

इस ससार में महिपाल मेवाड़ का अपराधी है। उसे पाताल मे भी नहीं छोड़ सकते। सोच विचार कर उसे सौंप दें ॥ २१ ॥

पतरो सुणकर सूरमा, जोर उठ्या गरमाय।
आँखड़ियाँ रतनालियाँ, ससतर लिया उठाय ॥ २२ ॥

पत्र को सुनकर शूरमा भारी क्रोधित हो उठे। उनकी आँखें लाल हो गईं। उन्होंने हथियार उठा लिए ॥ २२ ॥

के मरणो के मारणो, यो वीराँ को कोल।
ना सुनणा अपमान का, ये वैरी का बोल ॥ २३ ॥

वीरों का प्रण होता है या तो मर जाना या मार डालना, परन्तु शत्रु के अपमान-भरे वचन न सुनना ॥ २३ ॥

रणखेताँ की मोत सूँ, आ परणेगी हूर।
ईं धरती पर जीत सूँ, नित सरसासी नूर ॥ २४ ॥

युद्धक्षेत्र में मरने से हूरें मिलती हैं और विजयी होने से ससार में यश फैलता है ॥ २४ ॥

एकराय से सूरमा, एकराय दरबार।
दियो पडूत्तर तेज सूँ, मद को अन्त न पर ॥ २५ ॥

समस्त शूरमा एक राय हो गए। सारे दरबार की एक राय थी। उनके मद का कोई पार न था। उन्होंने तेजपूर्ण उत्तर दिया ॥ २५ ॥

सरणागत की पालना, नित बीराँ को कोल।
जे सुख चावो जीव को, काठा राखो बोल ॥ २६ ॥

शरणागत का पालन करना वीरों का नियम है। यदि प्राणों का सुख चाहते हो तो जबान वश में रक्खो ॥ २६ ॥

ना छोडाँ महपाल नै, ना छोडाँ म्हे कोल।
ना सुणसी उगराज ये, ईं वैरी का बोल ॥ २७ ॥

हम महिपाल को नहीं छोड़ते और अपना नियम भी नहीं तोड़ते। ये उमराव शत्रु के व्यग्य नहीं सुनेंगे।

ईं झगड़े को फैसलो करसी बस तरवार।
जे तन में मद ऊफणे, आय मिलो हरवार ॥ २८ ॥

इस झगड़े का फैसला तलवार से होगा। यदि शरीर में जोश है तो जब चाहो मिल सकते हो ॥ २८ ॥

वीर उमंग्या ओज में, मेवाड़ी सिरदार।
मारू बाजा बाजिया, सजकर चाली धार ॥ २९ ॥

मेवाड़ी सरदार जोश में उमग उठे। युद्ध के बाजे बजने लगे और सेना सज कर चल पड़ी ॥ २९ ॥

सारंगपुर के खेत में, भिड़ी फोज सूँ फोज।
ज्यूँ दो समदर आ मिल्या, धार पुन को ओज ॥ ३० ॥

सारगपुर के मैदान में दोनों सेनाएँ आ भिड़ी मानो पवन के प्रभाव से दो समुद्र आ टकराएँ हों ॥ ३० ॥

के दो परवत क्रोध में, चाल्या पाँख उठाय।
आय भिड़्या रणखेत में, पिरथी गई हिलाय ॥ ३१ ॥

अथवा दो पर्वत क्रोध में भर कर पाँखें फैलाकर चल पड़े हो और रणक्षेत्र में आ भिड़े हों और धरती हिलने लगी हो ॥ ३१ ॥

के भिड़िया भंभूल दो, भारी रेत उठाय।
सरणाटो छायो घणो, सारंगपुर के माँय ॥ ३२ ॥

अथवा दो भभूल भिड़ गए हों और रेत को उठा मारा हो। सारगपुर में भारी हलचल मची ॥ ३२ ॥

चंचल घोड़ो, खड़ग कर, हिरदे माँ रस वीर।
बड़े भाग सूँ पायसी, ईं धरती पर धीर ॥ ३३ ॥

चचल घोड़ा, हाथ में तलवार, हृदय में वीर रस ये सब चीजें किसी व्यक्ति को बड़े भाग्य से मिलती हैं ॥ ३३ ॥

मेवाड़ी मच्या घणा, माच्या मालव वीर।
तरवाराँ बाजी घणी, बरस्या गोला तीर ॥ ३४ ॥

मेवाड़ और मालव के वीर भयंकर वेग के साथ लड़े। तलवारें बजने लगीं और गोले तीर बरसने लगे ॥ ३४ ॥

वीरों के आनंद की, वह चाली रसधार।
रणधीरां के मोद को, और न जाणै सार ॥ ३५ ॥

वीरो के आनद की रसधारा बह चली। युद्धक्षेत्र के आनद को और कोई नहीं जान सकता ॥ ३५ ॥

देह रहो या ना रहो, रहो एक सनमान।
मुण्ड कटै धड़ सूँ लडै, ना छोड़ै कुलकान ॥ ३६ ॥

शरीर रहे या न रहे, परन्तु सम्मान जरूर रहे। वे सिर कटने पर धड़ से ही लड़ते थे परन्तु अपने कुल की मर्यादा नहीं छोड़ते थे ॥ ३६ ॥

सूरज अस्ताचल गयो, मालवपत तज खेत।
माँडूगढ में आ बड़्यो, राज उबारण हेत ॥ ३७ ॥

सूर्य अस्ताचल को गया और मालवपति युद्धक्षेत्र को छोड़कर अपना राज्य बचाने के लिए माँडूगढ़ में आ घुसा ॥ ३७ ॥

मालवपत की हार सूँ, वो महपाल पँवार।
सर सूक्याँ पंछी उड़्यो, गुरजरपत कै द्वार ॥ ३८ ॥

मालवपति की पराजय से वह महिपाल पवांर, तालाब के सूखने पर पक्षी के समान उड़ कर गुर्जरपति की शरण में चला गया ॥ ३८ ॥

माँडू को घेरो दियो, आ मेवाडी वीर।
हाथ पड़्यो महमूद अब, मालवपत गंभीर ॥ ३९ ॥

मेवाड़ी वीरों ने आकर माडू का घेरा डाल दिया। वह मालवपति महमूद अब उनके हाथ पड़ा ॥ ३९ ॥

उन्छव कै आनंद में, भयो गोठ को साज।
मद की धारा बह चली, नाच गान में आज ॥ ४० ॥

उत्सव के आनद में गोठ का साज हुआ और नाच गान में मद की धारा बहने लगी ॥ ४० ॥

वे घोड़ा पोसाक वै, नोकर चाकर लोग।
चित्त चढै ना साह कै, ये मेवाडी भोग ॥ ४१ ॥

वे घोड़े, वे, पोशाकें और व नौकर चाकर। परन्तु मेवाड़ के भोग शाह के चित्त में नहीं चढ़ते ॥ ४१ ॥

पातर नाचै अपसरा, गावै सोरठ राग।
फीकी जिंदगानी भयी, रैन बितावै जाग ॥ ४२ ॥

अप्सरा के समान पातुर नाचती थी और सोरठ राग गाती थी, परन्तु उसकी जिन्दगी फीकी हो गई और वह रात्रि जाग कर बिताने लगा ॥ ४२ ॥

सदा सुरंगो मालवो, आनंद भरी सिकार।
तीखा तुरी उफाण तन, जंगल बीच बहार ॥ ४३ ॥

मालवा सदा सुरगा है। वहाँ शिकार मे बड़ा आनद है—वे चचल घोड़े, शरीर का उफाण और जगल की शोभा ॥ ४३ ॥

मांडू का आनंद वै, बै मनभावन गान।
जन्नत भू पर दूसरो, बाग बण्यो छविमान ॥ ४४ ॥

मांडू के वे आनद। वे मनभावन गीत! ससार मे वह बगीचा दूसरा स्वर्ग सा छविमान है ॥ ४४ ॥

अब जाण्यो महमूद मन, या मेवाड़ी सान।
वीरां सींच्या खून सू, ई धरती का प्राण ॥ ४५ ॥

महमूद ने इस मेवाड़ी शान को अब समझा। इस धरती के प्राणो को वीरो ने अपने रक्त से सींचा है ॥ ४५ ॥

ई धरती कै अन्न मैं, नयो जायको एक।
ई धरती की पून की, जल की ऊँची टेक ॥ ४६ ॥

इस धरती के अन्न में एक नया ही स्वाद है। यहाँ की पवन और यहाँ के जल की टेक बड़ी ऊँची है ॥ ४६ ॥

राणाजी सुलतान की, भेंट भई दरबार।
बीर उमंग्या मोद मैं, चारण करी पुकार ॥ ४७ ॥

राणाजी और सुल्तान की दरबार में भेंट हुई। वीर आनद में उमग उठे और चारण ने पुकार कर कहा— ॥ ४७ ॥

जय जय जय मेवाड़ जय, जय जय जय चित्तोड।
सूरजकुल सूरज तपै, कुंभकरण सिरमोड़ ॥ ४८ ॥

मेवाड़ की बारबार जय हो। चित्तौड़ की बारबार जय हो। सूर्यकुल-सूर्य महाराणा कुंभाजी का प्रताप अटल हो ॥ ४८ ॥

वीरां में आनंद की, आई एक तरंग।
आख्यां सरसी मोद में, फड़क उठ्या अंग अंग ॥ ४६ ॥

वीरों में आनद की एक तरग दौड़ गई। उनकी आँखें सरस हो गई और अग अग फड़क उठे ॥ ४९ ॥

मालवपत मेहमान थे, म्हे पूरो सनमान।
करां चाव सूं आज दिन, बोलो मन को ग्यान ॥ ५० ॥

हे मालवपति, आप हमारे मेहमान हैं। हम बड़े चाव से आज आपका सम्मान करते हैं। आपका अब क्या विचार है? ॥ ५० ॥

नित सरसो मेवाड़पत, म्हे पायो सनमान।
थे पायो सुख जीत को, धन धन राजस्थान ॥ ५१ ॥

हे मेवाड़पति, आप सदा उन्नत रहें। मैंने पूरा सम्मान पाया और आपने विजय-सुख पाया। राजस्थान को वारवार धन्य है ॥ ५१ ॥

पातर नाची अपसरा, चाली रस की धार।
मद का प्याला ऊफण्या, भयो नयो संसार ॥ ५२ ॥

पातुर नाचने लगी। रसधारा बह चली। मद के प्याले उफनने लगे। ससार नया हो गया ॥ ५२ ॥

विदा कर्‌यो सुलतान नैं, आज नया आनंद।
तन मैं, मन में, आ रमी, मोद तरंग अमंद ॥ ५३ ॥

सुलतान को विदा किया। आज नया ही आनद मिला। तन में और मन में आनद की तरगें उठने लगीं ॥ ५३ ॥

कीरतखंभ चित्तोड़ में, थापित कर्‌यो महान।
अटल सुजस कुंभज तणो, धन धन राजस्थान ॥ ५४ ॥

चित्तौड़ में महान कीर्तिस्थम्भ स्थापित किया गया। वह महाराणा कुंभाजी का अटल सुयश है। राजस्थान को वारवार धन्यवाद है ॥ ५४ ॥

राजगरू

आरज देस पुनीत थल, मनहर राजस्थान।
तीरथ सी मेवाड धर, गढ चित्तोड महान ॥ १ ॥

आर्यदेश पवित्र स्थल है। उसमें राजस्थान मनोहर है। मेवाड़धरा तीर्थ तुल्य है। चित्तौड़गढ़ महान है ॥ १ ॥

तिलक भयो सै नेग सूँ, लीक वेद परमाण।
मेवाड़ी धर को धणी, पातल भयो सुजान ॥ २ ॥

शास्त्रीय विधि के अनुसार अच्छी रीति से राजतिलक हुआ और मेवाड़ धरा के स्वामी महाराणा प्रताप हुए ॥ २ ॥

पातल धाखो मोज सूँ, सिर कांटां को राज।
दुरगा के अस्थान में, भयो समागम आज ॥ ३ ॥

प्रतापसिंह ने आनंद के साथ कांटों का ताज अपने सिर पर धारण किया पर दुर्गा के मंदिर में सभा हुई ॥ ३ ॥

विपत घटा छाई घणी, आरजकुल पर आज।
माता आ करवाल में, कर वाहू को साज ॥ ४ ॥

हे माता, आज आर्यकुल पर विपत्ति की घटा छाई हुई है, तूँ हमारी तलवार में प्रवेश करके बाहु का साज बन ॥ ४ ॥'

वीर उमंग्या जोस में, दूर करी से म्यान।
ऊँची कर तरवार नै, बोल्या माँ के ध्यान ॥ ५ ॥

सभी वीर जोश में उमग उठे और म्यान से तलवार निकाल ली। वे माता के ध्यान में तलवार ऊँची करके बोल उठे ॥ ५ ॥

"अंत समै ताई लडे, ना बेचै तन मोल।'
बैरी को ले नाज ना,' ये छत्री का कोल ॥ ६ ॥

"अंत समय तक युद्ध करे, शरीर को मोल न बेचे और शत्रु का अन्न ग्रहण न करे" यह क्षत्रिय का प्रण है ॥ ६ ॥

अत्तर

जलमभोम कै नाम पर, तन मन धन बलिदान।
आरजकुल की आद सूँ, यो रणगीत महान॥ ७॥

"जन्म भूमि के नाम पर तन मन और धन बलिदान है" आदिकाल से आर्यकुल का यह रणगीत है॥ ७॥

उच्छव प्रथम अहेर को, करै फलाफल ग्यान।
वन में नाच्या आज दिन, धीर वीर बलवान॥ ८॥

अहेर का उत्सव सर्व प्रथम फलाफल को प्रगट कर देगा। वे धीर वीर बली आज बन में नाच उठे॥ ८॥

तोखा तुरी सवार सै, भाला चमचम हाथ।
मृगया कै आमोद में, रम चाल्यो सो साथ॥ ६॥

वे सब चपल घोड़ों पर सवार थे। उनके हाथ में चमकते भाले थे। सभी शिकार के आनंद में मस्त थे॥ ९॥

कलकल की धुन नीसरी, कूक्या वन का मोर।
पंछी दूर अकास में, उड भाग्या सुण सोर॥ १०॥

कलकल की ध्वनि हुई। वन के मोर बोल उठे। उस शोर को सुन कर पक्षी आकाश में उड़ भागे॥ १०॥

वन में माची धकधकी, छायो पूरो त्रास।
भाज्या भैंसा आरणा, जल को त्याग सुवास॥ ११॥

वन में धकधकी मच गई। बड़ा भय छा गया। जंगली भैंसे पानी का स्थान छोड़ कर भागे॥ ११॥

जित तित भाजी प्राण ले, धा हिरणाँ की डार।
डर सूँ सूक्या तालवा, ज्यूँ मृगराज निहार॥ १२॥

हरिणों की डार प्राण लेकर इधर उधर भागी। उनके कलेजे डर के मारे सूख गए मानों सामने शेर को देख लिया हो॥ १२॥

इत सूँ भाजी लूँगती, उत भाज्या खरगोस।
रोहि कै झंखाड में, लुक बैठ्या खामोस॥ १३॥

इधर से लोमड़ी दौड़ी। उधर से खरगोश भागे। वे बन के झाड़ों में छिप कर चुपचाप बैठ गए॥ १३॥

टूटी बन की वेलड़ी, टूटी वन को डाल।
टूटी आसा जीव की, अर जोड़ां की पाल॥ १४॥

जगल की लताएँ टूट गई। पेड़ों की डालियां भग्न हुई। जानवरों की जीवन-आशा जोहड़ की पाल भी टूट गई॥ १४॥

घोड़ा झपट्या जोर सूँ, सामी भया बराह।
जुद्ध क्रुद्ध की तेज यो, था वीरां की राह॥ १५॥

घोड़े तेजी से झपटे। सामने शूकर थे। यह वीरों का मार्ग है, यह क्रोधमय युद्धका तेज है॥ १५॥

आवो आवो, यो गयो, ऊँ की रोको राह।
खूब खूब बन में मची, ईं रस की के थाह॥ १६॥

"दौड़ो, दौड़ो, यह चला, उस का रास्ता रोको, खूब खूब" बनमें आवाज उठी। इस रस की क्या थाह? ॥ १६॥

सरपट घोड़ा दौड़िया, भाज्यो एक बराह।
सकतसिंघ परताप दो, ऊँ की पकड़ी राह॥ १७॥

घोड़े तेजी से दौड़े। एक सूअर भागा। उसकी राह को शक्तिसिंह और प्रतापसिंह ने रोका॥ १७॥

दूर गयो बन खण्ड मां, दोनूँ बीर खरार।
तीरां के संधान सूँ, दियो जमीं पर डार॥ १८॥

वह दूर जगल में चला। दोनों वीर तेज थे। तीरों की चोट से उसको जमीन पर डाल दिया॥ १८॥

साथी आया सरपट्या, जै जै भयी आवाज।
राणाजी के राज में, सदै धरम को साज॥ १९॥

साथी तेजी से आए। जय जय की आवाज हुई। "राणाजी के राज्य में धर्म का साज है"॥ १९॥

सकतसिंघ आ बीच में, रोक्यो सारो साथ।
राणाजी को तीर ना, ये है म्हारा हाथ॥ २०॥

शक्तिसिंह ने बीच में आकर सब को रोक लिया। यह तीर राणाजी का नहीं है, मेरे हाथ हैं॥ २०॥

"एक विरद रजपूत को छोड़ै नांय सिकार।
धन धरती पर ऊजलो, रजपूती को सार"॥ २१॥

"यह राजपूत का विरद है कि अपनी शिकार को न छोड़े—यही रजपूती का संसार में उज्ज्वल सार है" ॥२१॥

दोनूं अड़गा बात पर, जोर भयी तकरार।
ना सलट्या ना मानिया, मन में आयो खार॥ २२॥

दोनों अपनी बात पर अड़ गए। भयकर तकरार हुई। वे न सलट सके और न माने। मन में बड़ा खार पैदा हुआ॥ २२॥

दोनूं गरमाया घणा, दोनूं हो विकराल।
द्वंद युद्ध नै ऊतर्या, एक एक को काल॥ २३॥

दोनों बड़े क्रोधित हुए। दोनों एक दूसरे के काल रूप होकर द्वंद युद्ध के लिए तैयार हो गए॥ २३॥

[२]

परम जोत को च्यानणो, छायो च्यारूं ओर।
देवी कै अस्थान में, बै आनंद विभोर॥ २४॥

चारों ओर परम ज्योति का प्रकाश फैला है, वे देवी के मंदिर में आनन्द विभोर बैठे हैं॥ २४॥

सामवेद को गान ज्यूं, धर मानव को रूप।
देवालय में मोदमय, छायो आज अनूप॥ २५॥

मानों सामवेद का गान मानवरूप धारण करके आज देवमंदिर में अनुपम आनंद के साथ विराजमान है॥ २५॥

सिविराजा को त्याग के, आयो धार शरीर।
देवी कै चरणां रम्यो, मेटण जग की पीर॥ २६॥

अथवा राजा शिवि का त्याग शरीर धारण करके आ गया है और संसार की पीड़ा मिटाने के लिए देवी के चरणों में रमा हुआ है॥ २६॥

के दधीच को त्यागतप, आय बस्यो ई देस।
देवी पूजण नै गयो, धार विप्र को भेस॥ २७॥

अथवा दधीचि का त्यागतप इस देशमें आकर बस गया है और विप्र का वेष बना कर देवी पूजा करने गया है॥ २७॥

हिव में भयो बिकार झट, गरू को टूट्यो ध्यान।
मन में वन की धारना, आय कस्यो अस्थान ॥ २८ ॥

गुरु का ध्यान फौरन टूटा। उनके हृदय में विकार पैदा हुआ और उनके मनमें वनकी बात आ समाई ॥ २८ ॥

गरूवर आया बीड़ में, इन्नै बीर प्रताप।
इन्नें भालो हाथ में, लियाँ सकतसी आप ॥ २९ ॥

गुरुवर जंगल में आए। इस तरफ वीर प्रताप थे और दूसरी तरफ हाथ में भाला लिए शक्तिसिंह थे ॥ २९ ॥

गरूवर दी समझाणी, बोल्या मीठा बोल।
इमरत वाणी को सदा, नग नग भारी मोल ॥ ३० ॥

गुरुवर ने मीठे शब्दों में शिक्षा दी। अमृतवाणी के एक एक शब्द का मोल हीरे के तुल्य होता है ॥ ३० ॥

आँधी देखी आवती, टूटत देख्यो बाग।
सूरज देख्यो डूबतो, मिटती देखी राग ॥ ३१ ॥

उन्होंने आँधी आती हुई देखी। बाग उजड़ते हुए देखा। सूर्य अस्त होता हुआ देखा और राग मिटती देखी ॥ ३१ ॥

अरजन और किरात को, वन देख्यो तकरार।
ओरूँ आयो देस में, द्वापर को दीदार ॥ ३२ ॥

जंगल में अर्जुन और किरात का सा झगड़ा देखा, मानों इस देश में द्वापर का दृश्य फिर आ गया हो ॥ ३२ ॥

कालचक्र की चाल सूँ, दोनूँ मान्या नांय।
बोधिसत्व सा बीच में, गरूवर ऊभा आय ॥ ३३ ॥

समय की गति के कारण दोनों ही नहीं माने। गुरुवर उनके बीच में बोधिसत्व के समान दिखाई दिए ॥ ३३ ॥

ओम ओम की धुन भयी, चिमकी तेज कटार।
जोत मिलाई जोत में, गरूवर त्याग उदार ॥ ३४ ॥

ओम् ओम् की ध्वनि उठी। तेज कटारी चमकी। त्यागी गुरुवर ने अपनी ज्योति को परम ज्योति में मिला दिया ॥ ३४ ॥

गरू कै त्याग अनूप सूँ, माच्यो हाहाकार।
भ्रातृद्रोह को बीच सूँ, टूट पड्यो संसार ॥ ३५ ॥

गुरुवर के अनुपम त्याग से हाहाकार मच गया और भ्रातृद्रोह का ससार बीच में से टूट गया ॥ ३५ ॥

फुल्ड़ा बरस्या देह पर, पारख दिया दिखाय।
। आयो देव बिमाण झट, गरूवर लिया बिठाय ॥ ३७ ॥

उनकी देह पर फूल बरसने लगे। भगवान के दूत दिखलाई पड़े। झट देव विमान आया और उसमें गुरुवर को बिठा लिया ॥ ३७ ॥

सत राख्यो राख्यो धरम, तन मन सूँ स्वाधीन।
डूबत राख्यो देस नै, टूटत राखी बीण ॥ ३८ ॥

उन्होंने सत्य और धर्म की रक्षा की। वे तन और मन से स्वाधीन हैं। डूबते हुए देश की टूटती हुई वीणाको बचा लिया ॥ ३८ ॥

पातल राख्यो लोक में, राखी धर मेवाड।
रोपी भू पर धरम धुज, तम की रेख उखाड़ ॥ ३९ ॥

ससार में प्रतापसिंह को रक्खा। मेवाड़ धरा की रक्षा की। तम की रेखा को उखाड़ कर उन्होंने धर्म की ध्वजा को स्थापित किया ॥ ३९ ॥

सतजुग कै परकास सूँ, चिमकी जोत सदेव।
धन्य विप्र, गरू धन्य नित, धन्य धन्य भू देव ॥ ४० ॥

सतयुग के प्रकाश से सदैव ज्योति फैली है। विप्र को धन्य है, गुरू को धन्य है, भूदेव को बार बार धन्य है।

कित सूँ आया कित बसाँ, अब, कित जाणो होय।
चिमकै, भीणो च्यानणो, भेद, न जाणै, कोय ॥ ७ ॥

कहाँ से आए, कहाँ बस रहे हैं और अब कहाँ जाना होगा, यह भेद कोई नहीं जानता। बस ज़रा सा प्रकाश चमकता रहता है ॥ ७ ॥

ना सँमदर को माछली, ना जंगल को जीव।
ना नभ को पंछो लखै, पड़दै परली सींव ॥ ८ ॥

परदे के परे की सीमा न समुद्र की मछली, न जंगल का जीव और आकाश का पक्षी ही जान सकता है ॥ ८ ॥

जिंदगानी में मोह, ज्यूँ, धूँवो आगी मांय।
ज्यूँ जीवन रस मौत में, काठ मांयली छाय ॥ ६ ॥

जैसे आग में धूँवा है, उसी तरह जिन्दगी में मौत है। जैसे काठ में आग है, उसी तरह मौत में जीवनरस है ॥ ९ ॥

ऊमर तागो टूटगो, पण टूट्यो ना तार।
गीत समायो सून मे, रूप मिल्यो अंधार ॥ १० ॥

उम्र का धागा टूटने पर भी तार नहीं टूटता। गीत शून्य में समा जाता है और रूप अन्धकार में मिल जाता है ॥ १० ॥

च्यार दिनां की च्यानणी, फेर अँधेरी रात।
रात ढली छाँया फिरी, अब लाली परभात ॥ ११ ॥

चार दिन की चाँदनी के बाद अन्धेरी रात आती है। रात ढलने पर छाया फिर जाती है और प्रभात की लाली फूटती है ॥ ११ ॥

दिन तूँ प्यारा पावणा, घोर गुफा में जाय।
रात दिखासी च्यानणो, जगमग किरण सजाय ॥ १२ ॥

दिन, तूँ प्यारा मेहमान है, घोर गुफा में चला जा रहा है। अब जगमग किरणों को सजा कर रात अपना प्रकाश दिखाएगी ॥ १२ ॥

दिन आयो प्यारो घणो, एक प्राण दो जीव।
रस ले रस दे काल ज्यूँ, आ सँमदर की सींव। १३ ॥

दिन आ गया, यह बड़ा प्यारा है। इसके साथ एक प्राण हूँ या दो जीव ? समुद्र की सीमा पर लहर आकर रस लेती हैं और देती हैं ॥ १३ ॥

मृत्युलोक

ना पाणी अर मून ना, ना छांया परगास।
लोक अनूठो मोत को, ना धरती आकास ॥ १ ॥

वहां न पानी है, न पवन है। न छाया है, न प्रकाश है। मृत्युलोक बड़ा अनुपम है। वहां न धरती है, न आकाश ॥ १ ॥

राग बिराग अलाप ना, सोरभ रस संचार।
रूप रंग की सींव ना, विद्या ग्यान बिचार ॥ २ ॥

न वहां राग विराग की चर्चा है और न सौरभ और रस का सचार है। न रूप रंग है और न विद्या या ज्ञान-विचार है ॥ २ ॥

भूत भविष्यत भेद ना, वर्तमान को ग्यान।
आसा तिसना मोद ना, नारायण को ध्यान ॥ ३ ॥

न भूत भविष्य का भेद है, न वर्तमान का ज्ञान है। न आशा-तृष्णा है और न प्रभु चिन्तन है ॥ ३ ॥

मात पिता को मोह ना, ना प्यारी को प्रेम।
ना राजा को नाम जस, ना नेमी को नेम ॥ ४ ॥

न माता पिता का मोह है और न प्यारी का प्रेम। न राजा का नाम या ख्याति है और न नियमवान का नियम ही ॥ ४ ॥

पाप पुन्न को पंथ ना, ओर न तन का भोग।
भले बुरे को भेद ना, ओर न मन का रोग ॥ ५ ॥

न पाप पुण्य का मार्ग है, न शरीर का भोग है। न भले बुरे का भेद है और न मन के रोग हैं ॥ ५ ॥

घोर गुफा में आगिया, चिमकै आपो आप।
बिन मारग तारा फिरै, ना रस प्रेम अलाप ॥ ६ ॥

भयंकर गुफा में जुगनू अपने आपमें चमकते रहते हैं। तारे बिना रस और प्रेमालाप के चलते रहते हैं ॥ ६ ॥

कित सूँ आया कित बसाँ, अब, कित जाणो होय।
चिमकै मीणो च्यानणो, भेद न जाणै कोय॥ ७॥

कहां से आए, कहां बस रहे हैं और अब कहां जाना होगा, यह भेद कोई नहीं जानता। बस ज्रा सा प्रकाश चमकता रहता है॥ ७॥

ना सँमदर की माछली, ना जंगल को जीव।
ना नभ को पंछी लखै, पड़दै परली सींव॥ ८॥

परदे के परे की सीमा न समुद्र की मछली, न जंगल का जीव और आकाश का पक्षी ही जान सकता है॥ ८॥

जिंदगानी मैं मोह ज्यूँ, धूँवो आगी मांय।
त्यूँ जीवन रस मौत में, काठ मांयली लाय॥ ९॥

जैसे आग में धूँवा है, उसी तरह जिन्दगी में मौत है। जैसे काठ में आग है, उसी तरह मौत में जीवनरस है॥ ९॥

ऊमर तागो टूटगो, पण टूट्यो ना तार।
गीत समायो सून मे, रूप मिल्यो अंधार॥ १०॥

उम्र का धागा टूटने पर भी तार नहीं टूटता। गीत शून्य में समा जाता है और रूप अन्धकार में मिल जाता है॥ १०॥

च्यार दिनां की च्यानणी, फेर अँधेरी रात।
रात ढली छाँया फिरी, अब लाली परभात॥ ११॥

चार दिन की चांदनी के बाद अन्धेरी रात आती है। रात ढलने पर छाया फिर जाती है और प्रभात की लाली फूटती है॥ ११॥

दिन तूँ प्यारा पावणा, घोर गुफा में जाय।
रात दिखासी च्यानणो, जगमग किरण सजाय॥ १२॥

दिन, तू प्यारा मेहमान है, घोर गुफा में चला जा रहा है। अब जगमग किरणों को सजा कर रात अपना प्रकाश दिखाएगी॥ १२॥

दिन आयो प्यारो घणो, एक प्राण दो जीव।
रस ले रस दे झाल ज्यूँ, आ सँमदर की सींव॥ १३॥

दिन आ गया, यह बड़ा प्यारा है। इससे साथ एक प्राण हूं या दो जीव? समुद्र की सीमा पर लहर आकर रस लेती हैं और देती हैं॥ १३॥

तिरसो

गीतलड़ी

सखियाँ ओल्यूँ टेर दी, कोयल चाली आज।
इण बागाँ में खेलबा, ओरूँ आज्यो राज ॥ १ ॥

सखियों ने ओल्यूँ गीत प्रारम्भ कर दिया—आज कोयल चल पड़ी है, इन बागों में खेलने के लिए फिर आना ॥ १ ॥

सांवण गाई पीपली, चोबारे . गणगोर।
आँख फरूकी स्याम की, परदेसाँ को डोर ॥ २ ॥

सांवण मास में अपने चौबारे में प्रियतमा ने पीपली गीत गाया तो परदेश में प्रियतम की आँख फड़कने लगी ॥ २ ॥

लहर रमबा धण गई, ओढ कसूमल चीर।
फूली डाल गुलाब की, लुल लुल करै हुंसीर ॥ ३ ॥

प्रियतमा कसूमी चीर धारण करके लहर नाचने के लिए गई। गुलाब की फूली हुई डाली झुक झुक कर उसे याद कर रही है ॥ ३ ॥

सांवण मास सुहावणो, लहर्‌यो ओढ सुरंग।
बागाँ हींडण धण गई, मन में नई उमंग ॥ ४ ॥

सांवण के सुहावणे मास में सुरंग लहरिया ओढ़ कर प्रिया नई उमंग के साथ बाग में झूलने के लिए चली ॥ ४ ॥

सुपनो धण नै आइयो, अरथ बतायो पीव।
मन मुलकै, ही ऊमलै, ईं सुख की के सींव ॥ ५ ॥

प्रियतमा को स्वप्न आया और प्रियतम ने उसका अर्थ बतलाया। मन हँस रहा है, हृदय उलझ रहा है। इस सुख की क्या सीमा ? ॥ ५ ॥

मोमल थानै कुण दियो, यो इमरत को रूप।
पीताँ पीताँ ना धक्या, दोनूँ नैण अनूप ॥ ६ ॥

हे मोमल, यह अमृतमय अनुपम सौन्दर्य तुमको किसने दिया, जिसको पीते पीते ये नयन तृप्त नहीं हो सके ॥ ६ ॥

तूँ छै कूँजाँ भायली, तूँ जावै परदेस।
पीव बसै ऊं देस में, ले जाजे संदेस ॥ ७ ॥

कूँजां, तूँ हमारी मित्र है, तूँ परदेश जाकर प्रियतम को हमारा संदेश सुना दे ॥ ७ ॥

टिप्पणी

अरावली

आबूजी के जैन मंदिर प्रसिद्ध हैं। चित्तौड़, जालोर और रणथंभोर राजस्थान के प्रसिद्ध दुर्ग हैं। सांभर और अजमेर के चौहाण, आबू और मालवा के परमार तथा मेवाड़ के शीशोदिया राजपूत इतिहास में सुप्रसिद्ध हैं।

झरणो

टीटूडी = राजस्थान का एक पक्षी, जो "के पिऊँ, के पिऊँ" के समान वर्षा ऋतु में प्रायः बोलता हुआ सुना जाता है।

टीबा

टीबा = बालू रेत का टीला। कहा जाता है कि राजस्थान की मरुभूमि में पहले समुद्र हिलोरे मारता था। पावठ मोवठ = पौष और माघ की वर्षा।

दुर्गादास

राजकुमार अजितसिंह को वीर दुर्गादास ने अपनी चतुराई से औरङ्गजेब के चंगुल से बचाया था। सोजत और देसूरी—प्रसिद्ध युद्धस्थल, जहाँ दुर्गादास ने अप्रतिम शौर्य-प्रदर्शन किया। ख्यात = इतिहास।

मेवाड़ मंदाकिनी

राजपूत=पवित्र है पृथ्वीतत्त्व जिसके शरीर का। कविराजा=महाकवि कालिदास, जिन्होंने रघुवंश महाकाव्य बनाया। रावखुमान ने आचार शुद्धि का आदर्श स्थापित किया है। चुण्डाजी राजकुमार ने भीष्म के समान प्रतिज्ञा की थी। तारा और पृथ्वीराज की जोड़ी राजस्थान में अद्वितीय समझी जाती है। इनकी शौर्यकथा के गीत वहाँ सर्वप्रिय हैं। पन्ना धाय ने अपने पुत्र की बलि देकर कुमार उदयसिंह की बनवीर से रक्षा की। चेतक—महाराणा प्रताप का प्रिय अश्व, जिसने हल्दी घाटी के युद्ध में उनकी रक्षा की। भामाशाह ने अपना समस्त धन देशत्याग के लिए तत्पर महाराणा प्रताप का सैन्य समद्द के लिए सौंप दिया और अर्थत्याग का आदर्श स्थापित किया। चुण्डावत और शक्तावत वीरों ने सेनापतित्व के लिए महाराणा अमरसिंह के समय में विवाद किया। अंत में उनको

अन्तला दुर्ग सर्वप्रथम विजय करके दिखाने को कहा गया। दोनों दलों ने इस अवसर पर असामान्य वीरता दिखाई। महाराणा राजसिंह ने रूपनगर की राजकुमारी की रक्षा की और उससे विवाह किया।

कविवन्दना

पृथ्वीराज राठौड़ की "किसन रुकमणी री बेलि" नामक रचना डिङ्गल भाषा में सर्वोत्तम है। राजस्थान का राष्ट्रीय कवि—दुरसाजी। राजस्थान के प्रसिद्ध भक्त कवि—ईसरदासजी। पदम भगत के 'रुकमणी-मंगल" का राजस्थान में बड़ा प्रचार है। संत तुकाराम—महाराष्ट्रके भक्त कवि। नरसी मेहता—गुजरात के भक्त कवि। कृत्तिवास=बंगाल के भक्त कवि। बाँकीदास—जोधपुर के दरबारी कवि हुए हैं। चारण कृपाराम जी ने अपने भृत्य राजिया को सम्बोधन करके बहुत से दोहे कहे हैं जो राजस्थान में कहावतों के रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं। बारहट केसरीसिंहजी ने उदयपुर नरेश को दिल्ली दरबार में जाते समय एक पद्यमय पत्र लिखा कि उन्होंने तत्काल अपना विचार बदल दिया। यह पत्र "चेतावणी का चूँटक्यां" के नाम से प्रसिद्ध है।

लालादे

लालादे=बीकानेर नरेश के छोटे भाई पृथ्वीराज राठौड़ सम्राट् अकबर के दरबार में रहा करते थे। उनकी पत्नी लालादे परम सुन्दरी एवं विदुषी थी। उसकी मृत्यु से पृथ्वीराज को असह्य वेदना हुई। पृथ्वीराज डिंगल के महाकवि हैं।

पद्मिनी

महारानी पद्मिनी की चतुराई और रूप कथा राजस्थान का बच्चा बच्चा जानता है। उन्होंने जौहर व्रत के द्वारा अपनी रक्षा की और सतीधर्म का आदर्श स्थापित किया।

कृष्णाकुमारी

मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह की पुत्री। जगतसिंह और मानसिंह, दोनों ही कृष्णा से विवाह करने के लिए बारात लेकर उदयपुर पहुँचे। मेवाड़ में उन दिनों काफी कमजोरी आ घुसी थी। भयानक संघर्ष होने की परिस्थिति उत्पन्न हो गई। कृष्णाकुमारी के बलिदानने मेवाड़ को इस विपत्ति से बचाया।

टिप्पणी

अरावली

आबू जी के जैन मंदिर प्रसिद्ध हैं। चित्तौड़, जालोर और रणथंभोर राजस्थान के प्रसिद्ध दुर्ग हैं। सांभर और अजमेर के चौहाण, आबू और मालवा के परमार तथा मेवाड़ के सीसोदिया राजपूत इतिहास में सुप्रसिद्ध हैं।

झरणो

टीटूड़ी = राजस्थान का एक पक्षी, जो "के पिऊँ के पिऊँ" के समान वर्षा ऋतु में प्रायः बोलता हुआ सुना जाता है।

टीबा

टीबा = बालू रेत का टीला। कहा जाता है कि राजस्थान की मरुभूमि में पहले समुद्र हिलोरें मारता था। पावठ मोवठ = पौष और माघ की वर्षा।

दुर्गादास

राजकुमार अजितसिंह को वीर दुर्गादास ने अपनी चतुराई से औरङ्गजेब के चगुल से बचाया था। सोजत और देसूरी—प्रसिद्ध युद्धस्थल, जहाँ दुर्गादास ने अप्रति शौर्य-प्रदर्शन किया। ख्यात = इतिहास।

मेवाड़ मंदाकिनी

राजपूत=विश्व है पृथ्वीतत्व जिसके शरीर का। कविराजा=महाकवि

म्हारो देश

डफ=चंग। धमाल=एक गीत। ४ गींदड़=फाल्गुन मास का एक राजस्थानी खेल। रात के समय नगारे की आवाज पर डंके लड़ाते हुए लोग चक्राकार घूमते हैं। इसका देहातों में बड़ा प्रचार है। सांवण मास में राजस्थानी गावों की गली गली गीतों से गूंज उठती है। ईंडूणी=पानी के घड़े सिर पर रख कर लाने के लिए कपड़े की बनी हुई एक चक्राकार वस्तु। स्त्रियां इसको बड़ी सुन्दर बनाती हैं। डुबकमींगणों=राजस्थान के देहात का एक खेल, जिसमें बच्चे तालाब में एक मींगणा (ऊंट का गोबर) डुबोकर खेला करते हैं। टाट=भेड़-बकरियां। अलगोजो= देहाती लोगों का एक बाजा।

उसास

नाना साहेब, इतिहास प्रसिद्ध पेशवा के उत्तराधिकारी। मैसूर का सुल्तान टीपू, शेर के समान शक्तिशाली और हिम्मतवाला था। वह अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध में लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। पंजाब के अंग्रेजी राज में मिलाए जाने पर महाराजा दिलीपसिंह इंगलैंड ले जाए गए। उन्होंने वापिस पंजाब आने की इच्छा की, पर इजाजत नहीं मिली।

रहस्य

हाली=हल चलाने वाला। बावला=पपीहा। झूलरा=समूह। भभूलियो=वात्याचक्र।

पीव

ओल्यूं=विदा का गीत। लोर=सांवण के छोटे २ तेज दौड़नेवाले बादल।

राजगरू

प्रतापसिंह जब मेवाड़ के महाराणा हुए, तब उनके साथ उनके अनुज शक्तिसिंह शिकार के लिए गए। एक जंगली सूअर मारा गया। किसने मारा, इसी पर विवाद होने लगा। तलवारें तन गईं। मेवाड़ के राजगुरू ने बीच में पड़कर शांति रक्षार्थ आत्महत्या करली।

गीतलड़ी

ओल्यूं=कन्या की विदाई का गीत—"ऊंची तो पीवै ढोला बीजली—"। पीपली=वियोग का गीत—"बाय चल्याछा भंवरजी पीपली जी—"। लहर=होली का एक गीत—"लहर रमवा म्हे जास्यां—"। लहर्यो= सांवण का एक गीत—"लहर्यो ले द्यो जी—"। सुपनो=एक प्रेमगीत—। "ओजी ओ भँवर म्हाने सुपनो तो आयो जी राजा—"। मोमल एक गीत— "रंगढ़ारी ए मोमल चालो नी"। कूंजां=एक संदेश गीत—"तूं छै कूंजा भायली ए, तूँ छै धरम की भाण।"